UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186199
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP--2272—19-11-79—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H491.43 A27H

Accession No. P.G. H.6106

Author अग्रवाल, स्वर्णलता.

Title हिन्दी भाषा और नागरी लिपि. 1954

This book should be returned on or before the date last marked below.

हिंदी भाषा और नागरी लिपि

(विभिन्न विश्वविद्यालयों की बी० ए०, हिंदी साहित्य सम्मेलन
की विशारद, महिला विद्यापीठ की विदुषी तथा इसी
कक्षा की अन्य परीक्षाओं के 'हिंदी भाषा और
नागरी लिपि' विषयक पाठ्यक्रम
को ध्यान में रखकर
लिखी गई पुस्तक)

लेखिका
स्वर्णलता अग्रवाल, एम० ए०
प्रिंसिपल, महारानी सुदर्शन कालेज, बीकानेर

किताब महल, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण, १९५०

प्रकाशक—किताब महल, ५६-ए, जीरो रोड, इलाहाबाद।
मुद्रक—अनुपम प्रेस, १७ जीरो रोड, इलाहाबाद।

दो शब्द

'हिंदी भाषा एवं नागरी लिपि' के विषय में यह परिचयात्मक पुस्तक विभिन्न विश्वविद्यालयों के बी० ए०, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की विशारद, महिला विद्यापीठ की विदुषी तथा इसी की समकक्ष अन्य परीक्षाओं के पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी गई है।

इसके लिखने में डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी के 'भारतीय आर्य भाषा और हिंदी' ओझा जी की 'प्राचीन लिपिमाला' डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के 'हिंदी भाषा का इतिहास' तथा श्री भोलानाथ तिवारी के 'भाषाविज्ञान' एवं 'शब्दों का जीवन' नामक पुस्तकों से विशेष सहायता ली गई है। लेखिका इन सभी की आभारी है।

विद्यार्थियों के लाभार्थ अंत में उपयोगी प्रश्न भी दे दिये गए हैं।

महारानी सुदर्शन कालेज बीकानेर
दीपावली, २०११

स्वर्णलता अग्रवाल

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
हिन्दी भाषा का क्षेत्र (नकशा)		८
१. संसार की भाषाएँ	...	९
२. संसार की भाषाओं में हिंदी का स्थान	...	१६
क. शतम् समूह के उपपरिवार	...	१७
ख. केंटुम समूह के परिवार	...	१८
ग. आर्य परिवार	...	१९
३. भारतीय आर्य भाषा का इतिहास	...	२२
क. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा-काल	...	२२
ख. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा-काल	...	२३
ग. आधुनिक भारतीय आर्यभाषा-काल	...	२६
४. आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ	...	२७
क. परिचय	...	२७
ख. वर्गीकरण	...	३२
५. हिंदी भाषा का इतिहास	...	३६
क. प्राचीन काल	...	३७
ख. मध्यकाल	...	३८
ग. आधुनिक काल	...	३९
६. हिंदी और उसके साहित्यिक रूप	...	४०
क. हिंदी	...	४०
ख. उर्दू	...	४१
ग. हिंदुस्तानी	...	४२

७. हिंदी की उपभाषाएँ और ग्रामीण बोलियाँ ... ४३
क. पश्चिमी हिंदी ... ४३
ख. पूर्वी हिंदी ... ४५
ग. बिहारी ... ४६
घ. राजस्थानी ... ४७
ङ. पहाड़ी ... ४८
८. हिंदी भाषा का शब्दसमूह ... ४९
क. भारतीय शब्द ... ५२
ख. अभारतीय या विदेशी शब्द ... ५६
i यूरोपीय शब्द ... ५६
ii एशिया की भारतेतर भाषाओं के शब्द ... ५९
९. नागरी लिपि ... ६१
अक्षर और अंकों के विकास का चित्र ... ७१

परिशिष्ट

क. आर्यों का मूल स्थान और उनका भारत में आगमन ७५
ख. नागरी लिपि में सुधार ... ७७
ग. हिंदी भाषा की कुछ समस्याएँ ... ८२
घ. १९३१ ई० की जनगणना के अनुसार बोलने वालों की संख्या
आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ ... ९०
ङ. हिंदी भाषा तथा लिपि संबंधी परीक्षोपयोगी प्रश्न ९२

भाषाओं की सीमाएं
हिन्दी की उपभाषाओं की सीमाएं
बोलियों की सीमाएं

१

संसार की भाषाएँ

संसार में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। इनमें बहुत सी भाषाएँ आपस में व्याकरण, ध्वनि तथा शब्द-समूह आदि की दृष्टि से कुछ समानता रखती हैं। उदाहरण के लिए कुछ भाषाओं के कुछ शब्दों को लीजिए :

संस्कृत	हिंदी	फारसी	ग्रीक	लैटिन
सप्त	सात	हफ्त	**hepta**	**Septem**
जर्मन	अंग्रेजी	गाथिक	वेल्श	
sieben	**seven**	**sibun**	**saith**	

या

संस्कृत	हिंदी	ग्रीक	लैटिन	फ्रेंच	अंग्रेजी
त्रीणि	तीन	**tria**	**tres**	**trois**	**three**
जर्मन	रूसी				
drei	**tri**				

इन भाषाओं में ये शब्द एक अर्थ रखते हैं तथा ध्वनि की दृष्टि से भी प्रायः मिलते-जुलते हैं। इस प्रकार की शब्द-समूह, ध्वनि एवं व्याकरण आदि की समानता रखनेवाली भाषाएं एक परिवार की कही जाती हैं। इसका आशय यह है कि ये सब भाषाएँ किसी एक पुरानी भाषा से निकली हैं। इसी कारण इनमें समानताएँ मिलती हैं।

इस आधार पर संसार की भाषाओं का विद्वानों ने अध्ययन किया है

और उन्हें निम्नांकित १२ परिवारों[1] में वर्गीकृत किया है। इस वर्गीकरण को पारिवारिक वर्गीकरण कहते हैं। यहाँ प्रत्येक परिवार का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेना अयथा न होगा।

१. **भारोपीय परिवार**—यह विश्व का सबसे बड़ा परिवार है। इस परिवार की भाषाओं को बोलने वाले लोग प्रायः संपूर्ण यूरोप, ईरान, अफगानिस्तान तथा उत्तरी भारत में हैं।

इस परिवार के नाम के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद रहा है। कुछ लोग सेमेटिक तथा हेमेटिक की वजन पर इसे 'जफेटिक' कहने के पक्ष में रहे हैं। बाइबिल में मनुष्य जाति के हैमेटिक, सेमेटिक तथा जफेटिक तीन विभाग किये गये हैं। यही 'जफेटिक' उक्त नाम का आधार है। बाद में जब यह सिद्ध हो गया कि मनुष्य जाति के ये वर्गीकरण पूर्णतः अवैज्ञानिक हैं तो यह नाम छोड़ दिया गया, यद्यपि दो अन्य नाम—सेमेटिक तथा हैमेटिक—आज भी प्रचलित हैं। इसके बाद इस परिवार को 'इंडो-जर्मनिक' कहा गया। यह नाम जर्मन विद्वानों ने रक्खा था। इसका आधार यह था कि इस परिवार में एक छोर पर भारतीय और दूसरे छोर पर जर्मनिक भाषाएँ हैं। बाद में इस परिवार की केल्टी शाखा का भी पता लगा जो वेल्स और आयर्लैंड में बोली जाती है तो स्वभावतः यह नाम अशुद्ध हो गया और इसका नया नाम 'इंडो केल्टिक' रक्खा गया। यह नाम भी अधिक नहीं चल सका। इस परिवार की मुख्य भाषा संस्कृत के आधार पर

[1]संसार की भाषाओं को १२ परिवारों में बाँटने की एक पुरानी परंपरा है। यथार्थतः वैज्ञानिक दृष्टि से संसार की भाषाओं का विशेषतः अमरीकी भाषाओं का अभी तक पारिवारिक वर्गीकरण की दृष्टि से पूर्ण अध्ययन हुआ ही नहीं है। यों विद्वानों का अनुमान है कि केवल अमेरिका में ही लगभग सवा सौ परिवार होंगे। अफ्रीका की भी लगभग यही दशा है। इस प्रकार संसार में लगभग दो सौ या उससे भी अधिक भाषा-परिवारों के होने की संभावना है।

कुछ लोगों ने इसे 'सांस्कृतिक परिवार' कहना चाहा पर यह निश्चय होने पर कि इस परिवार की मूल भाषा संस्कृत नहीं है यह नाम भी अशुद्ध सिद्ध हुआ। कुछ लोगों ने इसे 'आर्य परिवार' भी कहा और कुछ लोग तो अब भी कहते हैं पर यथार्थतः यह नाम 'भारत-ईरानी' का हो सकता है जो इस परिवार का एक उपपरिवार है, अतः पूरे परिवार को इस नाम से नहीं पुकारा जा सकता। आजकल इसका प्रचलित नाम 'इंडो यूरोपीयन' है जिसका हिंदी अनुवाद 'भारत यूरोपीय' है।

हिंदी में मंगलदेव शास्त्री तथा धीरेन्द्र वर्मा आदि ने इसी—भारत यूरोपीय—नाम को अपनाया है। बाबूराम सक्सेना इसे आर्य कहने के पक्ष में हैं पर जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है 'भारत ईरानी' के लिए आर्य शब्द को लोग अधिक उपयुक्त मानते हैं। भोलानाथ तिवारी ने इसके लिए 'भारोपीय' शब्द का प्रयोग किया है। यह शब्द अधिक नामोचित ज्ञात होता है। यों 'भारतयूरोपीय' और 'भारोपीय' में कोई विशेष अंतर नहीं है। बात केवल यह है कि 'भारतयूरोपीय' का 'भारोपीय' संक्षिप्त रूप है। यह संक्षिप्त रूप अधिक नामोपयोगी है साथ ही 'इंडोयूरोपियन' का ठीक अनुवाद भी है। ऐसी स्थिति में यही नाम अधिक ग्राह्य लगता है।

ग्रीक, लैटिन, पुरानी ईरानी तथा संस्कृत आदि प्राचीन भाषाएँ तथा अंग्रेजी, फ्रेंच जर्मन, रशन, ईरानी, हिंदी, बंगला, मराठी एवं गुजराती आदि आधुनिक भाषाएँ इसी परिवार की हैं। इस परिवार में बड़ा विशाल साहित्य है।

२. **हामी या हैमेटिक परिवार**—प्रधानतः उत्तरी अफ्रीका तथा कुछ मध्य अफ्रीका में इस परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं। इंजील की पौराणिक कथाओं के अनुसार हज़रत नौह के दूसरे लड़के हैम या हाम अफ्रीका के लोगों के आदि पुरुष माने जाते हैं अतः उन्हीं के नाम पर इस परिवार का नाम हैमेटिक या हामी पड़ा है। इस परिवार की प्रधान भाषा मिश्र की काप्टिक थी। जीवित भाषाओं में सहारा के रेगिस्तान की

हौसा, उत्तरी अफ्रीका के समुद्रतट की लीबियन तथा पूर्वी भाग की एथिओपियन आदि भाषाएँ प्रधान हैं। मिश्र आदि में इस परिवार के स्थान पर मुसलमानों के प्रभाव से सामी परिवार का बोलबाला हो गया है और वहाँ अब सामी परिवार की अरबी भाषा का ही एक रूप बोला जाता है। हामी परिवार की कुछ भाषाओं के धार्मिक साहित्य तथा काप्टिक (मिश्र में प्रचलित पुरानी भाषा) आदि के चित्रलिपि में खुदे अभिलेख आदि मिलते हैं।

३. **सामी या सेमेटिक परिवार**—इस परिवार की भाषाएँ भी भारोपीय परिवार की भाँति ही बड़ी प्रभावशाली और महत्वपूर्ण हैं। फोनेशिया तथा असीरिया आदि विश्व के प्राचीन संस्कृति-केंद्रों से इस भाषा-परिवार का संबंध है। इस परिवार की भाषाओं में अधिक प्रसिद्ध हिब्रू (ओल्ड टेस्टामेंट या पुरानी पोथी की भाषा) तथा अरबी (कुरान की भाषा) हैं। अरबी भाषा ने प्रायः पूरे यूरोप, और भारत तथा ईरान आदि एशिया की भाषाओं पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ा है। अफ्रीका के मिश्र आदि में तो इसका और भी बोलबाला है। इस परिवार में पुराना और नया साहित्य पर्याप्त मात्रा में है। इसके अत्यन्त प्राचीन नमूने शिलालेखों में मिलते हैं। इस भाषा परिवार के नाम पड़ने का कारण नौह के पहले बेटे का नाम सेम या साम है। ये दक्षिणी पश्चिमी एशिया के आदि पुरुष माने जाते हैं।

कुछ विद्वान् लक्षणों की समानता के कारण सामी और हामी परिवारों को एक ही मानते हैं।

सामी परिवार की जीवित भाषाओं में वर्तमान अरबी प्रधान है।

४. **तिब्बती चीनी परिवार**—इस परिवार का प्रधान क्षेत्र चीन है। इसके अतिरिक्त, तिब्बत, बर्मा तथा स्याम आदि में भी इसी परिवार की भाषाएँ हैं। इस कुल को एकाक्षरी परिवार, चीनी परिवार या बौद्ध परिवार भी कहते हैं। बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से भारोपीय परिवार के बाद इसी का स्थान है। इस परिवार की प्रधान भाषा चीनी में कुछ विद्वानों के अनुसार तीन हजार वर्ष ई० पू० तक के साहित्य

होने के प्रमाण मिलते हैं, जिन्हें विश्व का प्राचीनतम साहित्य कहा जा सकता है। इस परिवार की जीवित भाषाएँ चीनी, तिब्बती, बरमी तथा स्यामी आदि हैं। कुछ विद्वान् जापानी तथा कोरियाई को भी इसी परिवार में रखने के पक्ष में हैं।

५. **यूरल अल्टाइक कुल**—इस परिवार की भाषाएँ टर्की, हंगरी और फिनलैंड से लेकर भूमध्य और उत्तरीय सागर तक फैली हैं। इस प्रकार तुर्की, यूरोप का कुछ भाग, साइबेरिया, मंगोलिया तथा मंचूरिया आदि इसका क्षेत्र है। इसके अन्य नाम फिनो-तातारिक, तूरानी तथा सीरियन आदि भी हैं। विस्तार की दृष्टि से भारोपीय परिवार के बाद इसी का स्थान है। कुछ विद्वान् तो कोरिया तथा जापान की भाषा को भी इसी कुल की मानते हैं। फिनलैण्ड की फिनिश, हंग्री की मगियार तथा तुर्की इसकी प्रधान भाषाएँ हैं। अत्यन्त पुराना साहित्य केवल तुर्की में है। तुर्की का अरबी, फारसी तथा भारत की भाषाओं पर बहुत प्रभाव पड़ा है।

६. **द्राविड़ परिवार**—दक्षिण भारत में नर्मदा और गोदावरी से लेकर कुमारी अंतरीप तक यह परिवार फैला है। बलुचिस्तान के एक छोटे क्षेत्र में भी इसी परिवार की भाषा है। इसी कारण कुछ लोगों का ख्याल है कि मोहनजोदड़ो में भी इसी परिवार की भाषा बोली जाती थी। इस परिवार में तामिल, तेलगू, मलयालय और कन्नड़ भाषाएँ प्रमुख हैं। इसकी प्रधान भाषा तामिल के नाम पर इसे तामिल परिवार भी कहते हैं। इस परिवार पर संस्कृत भाषा का बहुत प्रभाव पड़ा है।

७. **मैले पालीनेशियन परिवार**—फारमूसा, न्यूज़ीलैंड, सुमात्रा, जावा, बोर्नियो, फिलिपाइन तथा मेडागास्कर आदि द्वीपों, मलाया प्रायद्वीप तथा भारत की कोल-भील और संथालों के क्षेत्र की भाषाएँ इसी परिवार की हैं। केवल जावा को छोड़ कर और स्थानों पर इस परिवार के पुराने लेख आदि

नहीं मिलते। इसे कुछ लोग इंडोनेशिया परिवार भी कहते हैं। इस परिवार की कुछ भाषाओं पर संस्कृत का प्रभाव बहुत अधिक है।

८. **बंटू परिवार**—इस परिवार को काफिर परिवार भी कहते हैं। इस परिवार में आदमी के लिए सभी भाषाओं में बंटू शब्द ही कुछ ध्वनि परिवर्तनों के साथ प्रयुक्त होता है अतः इसे बंटू परिवार कहते हैं। इसका क्षेत्र मध्य और दक्षिणी अफ्रीका है। जंजीवार की स्वाहिली भी इसी कुल की है। इस परिवार की भाषाएँ बड़ी कोमल और मधुर हैं। इनमें बोलने का ढंग भी गाने जैसा है। इस परिवार की भाषाओं में साहित्य प्रायः नहीं के बराबर है।

९. **मध्य अफ्रीका परिवार**—अफ्रीका के उत्तरी तथा कुछ मध्य तक हामी परिवार है और दक्षिण में बंटू। बीच के भाग में मध्य अफ्रीका परिवार है। इसे सुडान परिवार भी कहते हैं। यह परिवार बहुत सी बातों में बंटू तथा कुछ में चीनी—तिब्बती परिवार से मिलता-जुलता है। इस परिवार में अत्यन्त छोटी-छोटी प्रायः चार सौ भाषाएँ हैं।

१०. **अमेरिका परिवार**—इसमें उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका की मूल भाषाएँ हैं। फ्रेड्रिक मूलर के अनुसार यह कोई एक परिवार नहीं हैं बल्कि इसमें सौ से ऊपर परिवार हैं। सत्य यह है कि अभी तक इनका पूर्ण अध्ययन नहीं हुआ है। कुछ विद्वानों ने अमरीकी भाषाओं को जिनकी संख्या लगभग ४०० है २४ या ३० वर्गों में रखा है। यों मोटे रूप से पाँच-पाँच वर्ग दोनों अमेरिका की भाषाओं के बनाए जाते हैं। अमरीका की मूल भाषाओं में प्रधानतः एस्किमो, चेरोकी तथा गुअर्ती आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

११. **आस्ट्रेलिया-प्रशांत महासागरीय परिवार**—आस्ट्रेलिया तथा प्रशांत सागर के द्वीपों में इस परिवार की भाषाएँ हैं। इसके अन्तर्गत मैक्वारी तथा तस्मानिया की भाषा प्रधान हैं। इस परिवार के भाषा-

भाषियों की संख्या दिन पर दिन कम हो रही है। संभव है कुछ दिन में इस परिवार का नामो-निशान दुनिया से मिट जाय।

१२. **शेष भाषाएँ**—विश्व में अभी बहुत सी भाषाएँ ऐसी हैं जिनके बारे में पारिवारिक वर्गीकरण की दृष्टि से कुछ नहीं कहा जा सकता, अतः शेष में इनका नाम है। यूरोप की बास्क, यूट्रस्कन तथा एशिया की काकेशश आदि इसी प्रकार की भाषाएँ हैं।

२

संसार की भाषाओं में हिंदी का स्थान

पीछे के अध्याय में हम लोगों ने विश्व की भाषाओं को बारह परिवारों में बाँटा है। हिंदी इन बारहों में से प्रथम परिवार—भारोपीय परिवार—की भाषा है अतः विश्व की भाषाओं में उसके स्थान-निर्धारण के लिए इस परिवार से अपेक्षाकृत अधिक परिचय प्राप्त करना आवश्यक है।

भारोपीय परिवार की ध्वनियों के अध्ययन के आधार पर ब्रैडके नामक विद्वान् नें इस परिवार को मूलरूप में दो समूहों या वर्गों में बाँटा है। एक वर्ग को उसने 'केंटुम्' कहा है और दूसरे को 'शतम्' (सतम्)।

इस वर्गीकरण का आधार यह है कि कुछ भाषाओं में जो कंठस्थानीय आदि ध्वनियाँ हैं वे ही कुछ भाषाओं में स, श, आदि ऊष्म हो गई हैं और यह बात 'सौ' के लिए प्रयुक्त शब्दों में बहुत स्पष्ट है। उदाहरणार्थ सौ के लिए अवस्ता में सतम्, संस्कृत में शतम् तथा रूसी में स्तो है तो दूसरी ओर लैटिन में केन्टुम, इटेलियन में केन्टो और तोखारी में कंध है। यहाँ स्पष्ट है कि पहले वर्ग में 'स' है तो दूसरे में 'क'; अतः संस्कृत के शतम् या अवस्ता के सतम् के आधार पर एक वर्ग को शतम् (सतम्) और लेटिन केंटुम के आधार पर दूसरे को केंटुम कहा गया है।

शतम् वर्ग में आर्य, आर्मेनियन, बाल्टो-स्लैवोनिक तथा अलबेनियन—ये चार—उपकुल या उपपरिवार हैं।

केंटुम वर्ग में ग्रीक, इटैलिक, केल्टिक तथा जर्मनिक उपपरिवार हैं।

इन उपपरिवारों का यहाँ कुछ विस्तृत परिचय दिया जा रहा है—

क. शतम् समूह के उपपरिवार

१. **आर्य**—आर्य उपपरिवार को भारत-ईरानी उपपरिवार भी कहते हैं। इस उपपरिवार की भाषाओं का विश्व की भाषाओं में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। हिंदी इसी उपपरिवार की भाषा है अतः इस पर आगे विस्तार से विचार किया जायगा।

२. **आर्मेनियन**—इस उपपरिवार की भाषाएँ यूरोप और एशिया के बीच में हैं। कुछ लोग इसको आर्य उपपरिवार में रखने के पक्ष में हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि आर्य उपपरिवार की ईरानी भाषा का इस पर बहुत प्रभाव पड़ा है। इस शाखा में पुराने **कीलाक्षरीय** लेख मिलते हैं। इसकी वर्तमान जीवित भाषाएँ फ्रीजियन, अरारात और स्तंबुल आदि हैं।

३. **बाल्टो-स्लैवोनिक**—इसमें दो प्रधान शाखाएँ बाल्टिक तथा स्लैवोनिक हैं। बाल्टिक में प्राचीन प्रशन (जो १७वीं सदी में समाप्त हो गई), लिथुएनियन और लेटिश तीन प्रधान भाषाएँ हैं। लिथुएनियन का भाषा-विज्ञान की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि यह कम विकसित होने के कारण मूल भारोपीय भाषा के बहुत निकट है। इन तीनों का क्षेत्र प्रशा, प्रशा का उत्तरी पूर्वी भाग तथा लैटिविया है।

स्लैवोनिक शाखा बड़ी विस्तृत है और पूर्वी यूरोप का एक बड़ा भाग ढक लेती है। इसमें पूर्वी, पश्चिमी तथा दक्षिणी तीन उपशाखाएँ हैं जिनकी प्रधान भाषाएँ रूस, बलगेरिया, सर्विया, पोलैण्ड, बोहेमिया, आस्ट्रिया तथा चेकोस्लोवेकिया आदि में बोली जाती हैं। इन भाषाओं में बहुत पुराना साहित्य नहीं है। प्राचीनतम लेख ९वीं सदी तक के हैं।

४. **अल्बेनियन**—इसके बोलने वाले अल्बेनिया तथा कुछ ग्रीस में हैं। इसमें घेघ और टोस्क दो प्रधान वर्ग हैं। इसमें प्राचीन साहित्य नहीं है। १७वीं सदी के बाद से कुछ साहित्य का आरंभ हुआ है। अल्बेनियन

में तुर्की, लैटिन तथा ग्रीक भाषाओं से बहुत से शब्द उधार ले लिये गये हैं।

ख. केंटुम समूह के उपपरिवार

१. **ग्रीक**—इसे हेलेनिक उपपरिवार भी कहते हैं। केंटुम समूह की यह प्राचीनतम शाखा है। इस शाखा में भौगोलिक कारणों से बहुत सी बोलियाँ बहुत पहले से विकसित हो गई हैं। विश्व प्रसिद्ध कवि होमर की इलियड तथा ओडेसी ग्रीक में ही हैं। सुकरात, अरस्तू तथा अफलातून भी इसी भाषा के भाषी थे। यहाँ का साहित्य बहुत धनी तथा काफी प्राचीन है। बाइबिल की नई पोथी मूलतः यहीं की भाषा में लिखी गई थी। ग्रीस, साइप्रस तथा क्रीट आदि में इसी के आधुनिक रूप आज प्रचलित हैं।

२. **इटैलिक**—इसे लैटिन उपपरिवार भी कहते हैं। इस शाखा की प्राचीनतम भाषा लैटिन है जिसका रोमन साम्राज्य के कारण प्रायः पूरे यूरोप पर बोलबाला रहा है। इसके शब्द सभी यूरोपीय भाषाओं में हैं। आज भी नए शब्दों के निर्माण में यूरोपीय भाषाएँ इसी से सहारा लेती हैं। इसकी वर्तमान प्रसिद्ध भाषाएँ इटाली, फ्रांसीसी, स्पेनी, पुर्तगाली तथा सेफार्डी आदि हैं। लैटिन भाषा के प्राचीन लेख ५०० ई० पू० तक के मिलते हैं। इस शाखा का साहित्य प्राचीन और नवीन दोनों दृष्टियों से पर्याप्त धनी है। पुराने साहित्य में यदि लैटिन का नाम लिया जा सकता है तो नवीन में फ्रांसीसी का।

३. **कैल्टिक**—लगभग दो हजार वर्ष पूर्व इसके बोलने वाले उत्तरी इटली, गाल, मध्य यूरोप तथा स्पेन आदि बहुत बड़े क्षेत्र में थे, पर अब स्काटलैंड, वेल्स, मानद्वीप, ब्रिटेनी, आयर्लैंड तथा कार्नवाल के कुछ भागों में ही इसका क्षेत्र रह गया है। इटेलिक का इस शाखा से बहुत साम्य है। इस शाखा की एक प्राचीन प्रधान भाषा गालिक थी जो किसी समय में एशिया

माइनर तक पहुँच गई थी, पर अब कहीं नहीं बोली जाती। केवल पुराने नामों आदि में इसके अवशेष हैं। कार्निश भी अब जीवित नहीं है। मान-द्वीप की मेंक्स भी अब समाप्तप्राय हैं। इस शाखा की जीवित भाषाओं में आयरिश, वेल्स तथा आर्मेरिकन प्रधान हैं।

४. **जर्मनिक**—इसको ट्यूटानिक भी कहते हैं। यह विश्व का सबसे महत्वपूर्ण उपपरिवार है, क्योंकि इसी की शाखा अँग्रेज़ी आज विश्व-भाषा बनी हुई है। जर्मन भाषा भी इसी उपपरिवार की है। इस शाखा के दो ध्वनि परिवर्तन भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में बहुत महत्व रखते हैं। इस शाखा के पुराने उदाहरण तीसरी सदी के हैं जो रूनी लिपि में हैं। इसकी प्रधान वर्तमान भाषाएँ अंग्रेज़ी, जर्मन, डच, डैनिश, नार्वेजियन, स्वेडिश तथा आइसलैंडिक आदि हैं।

ग. आर्य उपपरिवार

ऊपर भारोपीय परिवार के शतम् और केंटुम समूह में आने वाले आठ उपपरिवारों पर विचार किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में प्रधान रूप से हमारा संबंध आर्य उपपरिवार से है अतः यहाँ उस पर विस्तार से विचार कर लेना आवश्यक है।

आर्य उपपरिवार को भारत-ईरानी उपपरिवार भी कहा जाता है। विद्वानों ने इसको तीन शाखाओं में बाँटा है :—

१. ईरानी

२. दरद

तथा ३. भारतीय

१. **ईरानी**—ईरानी भाषा बहुत पुरानी है। इसमें साहित्य का निर्माण बहुत पहले आरंभ हो गया था पर ग्रीक और अरब आक्रमणकारियों ने उसे नष्ट कर डाला। ईरानी का क्षेत्र ईरान के अतिरिक्त रूसी तुर्किस्तान, अफगानिस्तान तथा बलूचिस्तान भी है।

ईरानी भाषा को विकास की दृष्टि से (१) प्राचीन (२) मध्यकालीन

और (३) आधुनिक, तीन कालों में बाँटा जा सकता है। प्राचीन ईरानी के नमूने पारसियों के धर्मग्रंथ अवस्ता में मिलते हैं। अवस्ता की भाषा ऋग्वेद की भाषा के बहुत समीप है। कुछ वाक्य तो ऐसे भी हैं जो साधारण परिवर्तन से ही वैदिक संस्कृत जैसे बनाये जा सकते हैं। मध्यकालीन ईरानी का मुख्यरूप पहलवी है, जिसके हुज्वारेश और पाज़न्द दो रूप मिलते हैं। हुज्वारेश पर सामी प्रभाव बहुत पड़ा है। जिस प्रकार पुरानी ईरानी संस्कृत से मिलती-जुलती है, उसी प्रकार मध्यकालीन ईरानी प्राकृत-अपभ्रंश से। आधुनिक ईरानी या फारसी का आरंभ फिरदोशी के समय से होता है। उसका शाहनामा (१००९ ई०) आधुनिक ईरानी का प्रथम प्रामाणिक ग्रंथ है। आधुनिक फारसी में तुर्की और अरबी शब्द बहुत आ गए हैं। आधुनिक फारसी की प्रधान बोलियाँ देवारी, पश्तो, बिलोची, कुर्दिश तथा ओसेतिक आदि हैं। कुछ बोलियाँ तो भाषाएँ भी बन चुकी हैं।

२. **दरद**—दरद का क्षेत्र पामीर तथा पश्चिमोत्तरी पंजाब है। यह एक प्रकार से भारतीय आर्य भाषा और ईरानी के बीच में है। इसे पिशाच भी कहते हैं। इसकी बहुत सी बोलियाँ अब भाषाएँ बन चुकी हैं, जिनमें कश्मीरी तथा कोहिस्तानी प्रधान हैं। इसकी शीना, काफिरी तथा चित्राली आदि बोलियाँ भी प्रसिद्ध हैं। कश्मीरी भाषा को बहुत दिनों तक लोग आर्यभाषा समझते थे। इसका प्रधान कारण था उसमें संस्कृत के शब्दों का आधिक्य। कहने की आवश्यकता नहीं कि कश्मीर कभी संस्कृत पंडितों का केन्द्र था और उन्हीं के प्रभाव से यहाँ की भाषा में संस्कृत शब्द चले गए। कश्मीर में कई बोलियों का विकास हो गया है, जिनमें कुछ तो पंजाबी से मिलकर बड़ी विचित्र हो गई हैं। कश्मीरी में १४वीं सदी के बाद से साहित्य मिलता है। यहाँ फ़ारसी और शारदा दोनों ही लिपियाँ प्रयुक्त होती हैं।

३. **भारतीय**—यहाँ भारतीय से अर्थ भारतीय तथा पाकिस्तानी दोनों ही से है। भारतीय आर्य भाषा को भी ईरानी की भाँति तीन कालों में बाँटा

जा सकता है—१. प्राचीन, २. मध्यकालीन तथा ३. आधुनिक। प्राचीन कालीन भारतीय आर्य भाषा के प्रमुखत: से दो रूप हैं। एक तो वेदों में मिलने वाली वैदिक संस्कृत और दूसरी बाद की लौकिक संस्कृत, जिसमें वाल्मीकि, व्यास तथा कालिदास आदि ने रचना की। मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के मोटे रूप से तीन भेद—पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश—हैं। आधुनिक भारतीय आर्य भाषा में आज की जीवित हिंदी, बँगला, आसामी, उड़िया, मराठी, गुजराती तथा सिंधी आदि भाषाएँ हैं।

पिछले एवं प्रस्तुत अध्याय में कही गई बातों को ध्यान में रखते हुए विश्व की भाषाओं में हिंदी के स्थान निर्धारण के लिए अब हम कह सकते हैं कि विश्व के भाषा परिवारों में भारोपीय परिवार की शतम् समूह की भारत-ईरानी या आर्य उपपरिवार की भारतीय आर्य भाषा की आधुनिक भाषाओं में एक प्रधान भाषा हिन्दी है।

३

भारतीय आर्य भाषा (१५०० ई० पू० से आधुनिक काल तक) का इतिहास

भारतीय आर्य भाषा के इतिहास को—क. प्राचीन भारतीय आर्यभाषा-काल, ख. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा-काल तथा ग. आधुनिक भारतीय आर्य भाषा-काल—इन तीनों कालों में बाँटा जा सकता है। यहाँ तीनों कालों का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

क. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा-काल

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा-काल लगभग १५०० ई० पू० से ५०० ई० पू० तक अर्थात् एक हज़ार वर्षों का है। इसका प्राचीनतम रूप ऋग्वेद संहिता में मिला है जिसे 'वैदिक संस्कृत' या 'छांदस' कहते हैं। ऋग्वेद संहिता की भाषा तत्कालीन बोलचाल की भाषा तो नहीं है पर उसी पर आधारित साहित्यिक रूप है। धीरे-धीरे उस भाषा में विकास होता गया। विकास की स्वाभाविक सीढ़ियाँ संहिता के बाद ब्राह्मण, उपनिषद एवं सूत्र साहित्य में देखी जा सकती हैं। यही विकास आगे बढ़कर वहाँ पहुँचा जिसे हम 'संस्कृत' नाम से पुकारते हैं। भाषा में जब बहुत विकृति होने लगी तो पाणिनि ने विकार रोकने के लिए उसे व्याकरण के नियमों में जकड़ दिया। भाषा को शुद्ध रूप देने एवं व्याकरण में जकड़ने के लिए पाणिनि को भाषा का संस्कार करना पड़ा इसी कारण उसका नाम 'संस्कृत' (जिसका

संस्कार किया गया हो) पड़ा। उसी संस्कृत का संस्कृत नाम से कालिदास तथा भवभूति आदि साहित्यकारों ने उपयोग किया है।

ख. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा-काल

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है पाणिनि ने व्याकरण में कस कर तथा संस्कार करके साहित्य के लिए संस्कृत भाषा तो देदी पर बोलचाल की भाषा में स्वाभाविक विकास (जिसे पंडित लोग विकार या विकृति कहते हैं) होता गया। वह विकसित रूप जो प्राचीन भारतीय आर्यभाषा (वैदिक संस्कृत तथा संस्कृत) एवं आधुनिक आर्य भाषा (हिंदी, मराठी तथा बँगला आदि) के बीच में पड़ता है, मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के नाम से पुकारा जाता है। इसका समय ५०० ई० पू० से १००० ई० तक है। इन १५०० वर्षों को भाषा की दृष्टि से पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश—इन तीन भाषाओं के कालों में बाँटा जा सकता है। यहाँ इन तीनों पर कुछ विस्तार से विचार किया जायगा।

१. पालि (५०० ई० पू० से १ ई० पू० तक)—मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा का वह रूप जो लगभग ५०० ई० पू० से १ ई० पू० तक प्रचलित था पालि नाम से पुकारा जाता है। पाली इसका पुराना नाम नहीं है। 'पालि' नाम का इस भाषा के लिए गलती से पश्चिमी विद्वानों ने उपयोग किया है। पाली के मूल अर्थ के बारे में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोगों के अनुसार यह रेखा या पंक्तिवाची शब्द है और बुद्ध वचनों के लिए इसका प्रयोग होता रहा है। पालि भाषा का प्रयोग बौद्ध धर्म के साहित्य (पिटक तथा अनुपिटक) में मिलता है। पालि उस काल की बोलचाल की भाषा पर आधारित साहित्यिक भाषा थी। गाइगर आदि बहुत से विद्वान् इसे तत्कालीन राष्ट्रभाषा मानते हैं। सामान्यतः इसे लोग मगध की भाषा मानते हैं पर कुछ विद्वान् शूरसेन तथा कुछ कोसल की बोली पर आधारित भी मानते हैं। गिरनार तथा मनसेरा आदि अनेक

स्थान पर मिले अशोक के शिलालेखों की प्राकृत भी इसी काल की है। इन धर्म लिपियों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय उत्तरी भारत में पूर्वी, पश्चिमी और पश्चिमोत्तरी—भाषा के ये तीन रूप प्रचलित थे। इसका अर्थ यह है कि तत्कालीन भाषा में कई बोलियों का विकास हो चुका था। आगे चल कर ये ही बोलियाँ विभिन्न अपभ्रंशों तथा हिंदी मराठी आदि विभिन्न आधुनिक आर्य- भाषाओं में विकसित हुईं।

प्राकृत (१ ई० से ५०० ई०)—'प्राकृत' यथार्थतः 'संस्कृत' का विरोधी नाम है। जब पाणिनि ने भाषा का संस्कार कर उसे संस्कृत नाम दिया तो असंस्कृत या स्वाभाविक भाषा जो जनता में प्रचलित थी 'प्राकृत' कही गई। उसके इस नाम का आधार था संस्कृत के विरुद्ध उसका स्वाभाविक या प्राकृतिक होना। ऊपर हम देख चुके हैं कि पालि तथा अशोक काल में पूरा आर्य-भाषा-भाषी क्षेत्र केवल एक ही बोली नहीं बोल रहा था। उसमें उत्तरी, पश्चिमी और पश्चिमोत्तरी भेद विकसित हो रहे थे। १ ई० तक आते-आते ये भेद अत्यन्त स्पष्ट हो गए और ये ही विभिन्न प्राकृतों के नाम से प्रसिद्ध हुए।

यों तो पूरे देश में लगभग ९ या १० प्राकृतों का प्रचार था पर उनमें प्रधान महाराष्ट्री (मूलतः महाराष्ट्र की), शौरसेनी (शूरसेन जनपद की) मागधी (मगध की), अर्धमागधी (शूरसेन तथा मगध के बीच की), पैशाची (दरद प्रदेश की) तथा लाटी (लाट देश की) प्राकृत थीं। इनमें प्रथम पाँच प्राकृतों का साहित्य में भी प्रयोग हुआ है। महाराष्ट्री प्राकृत इन सबमें प्रधान तथा स्टैंडर्ड थी। इसी कारण प्राकृत के वैयाकरणों ने महाराष्ट्री का ही व्याकरण विस्तार से दिया है और अन्य को उसी के सदृश बतलाते हुए थोड़ी बहुत विभिन्नताएँ बतला दी हैं। नाटकों में तथा गीतों में भी प्रमुखतः महाराष्ट्री का ही प्रयोग हुआ है। महाराष्ट्री प्राकृत में लिखित हाल द्वारा संकलित 'गाथा सतसई' एक प्रसिद्ध रचना है। आज

केवल साहित्य में प्रयुक्त प्राकृतों के ही रूप हमारे समक्ष हैं। यह हमें भूलना नहीं चाहिए कि ये रूप तत्कालीन बोलियों के न होकर उनके साहित्यिक रूपों के हैं। हाँ उनके आधार पर बोलियों का अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है।

अपभ्रंश (५०० ई०-१०००)—प्राकृत काल में जब प्राकृतों का साहित्य में प्रयोग होने लगा तो संस्कृत की भाँति उनको भी विद्वानों ने व्याकरणों में बाँध दिया पर जनभाषा तो रुक नहीं सकती थी। अतः विकास होता गया। नवविकसित भाषा व्याकरणबद्ध प्राकृतों की तुलना में बिगड़ी या अपभ्रष्ट थी, अतः उसे लोगों ने 'अपभ्रंश' नाम दिया।

तत्कालीन वैयाकरणों के अनुसार प्रधान रूप से तीन अपभ्रंश भाषाएँ थीं—नागर, ब्राचड़ और उपनागर। नागर अपभ्रंश का क्षेत्र गुजरात के नागर ब्राह्मणों का क्षेत्र था। इसका व्याकरण प्रसिद्ध विद्वान हेमचंद्र ने लिखा है। उनके अनुसार इस उपभ्रंश का आधार शौरसेनी प्राकृत थी। ब्राचड़ अपभ्रंश का क्षेत्र सिंध था। उपनागर अपभ्रंश उपर्युक्त दोनों के बीच में राजस्थान तथा कुछ पंजाब में बोली जाती थी। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने इसे ब्राचड़ तथा नागर के मेल से बना बतलाया है।

यथार्थतः इन तीन तक ही अपभ्रंशों को सीमित मानना उचित नहीं है। सभी प्राकृतों से एक-एक अपभ्रंश का विकास हुआ और वे ही आगे चल कर सिंधी, गुजराती, हिंदी, मराठी तथा बँगला आदि आधुनिक भाषाओं के रूप में विकसित हुईं। इस प्रकार पैशाची, लाटी, मागधी, अर्ध-मागधी, शौरसेनी तथा महाराष्ट्री आदि लगभग १० अपभ्रंश भाषाएँ बोली जाती रही होंगी।

अपभ्रंशों का जीवित भाषा के रूप में प्रयोग ५०० ई० से १००० ई० तक रहा पर साहित्य में ये भाषाएँ ६ठीं-७वीं सदी से तेरहवीं,-चौदहवीं सदी तक प्रचलित रहीं। जिस प्रकार पालि भाषा में केवल बौद्ध धर्म संबंधी साहित्य है उसी प्रकार कुछ थोड़े अपवादों को छोड़ कर अपभ्रंश में जैन

धर्म संबंधी साहित्य ही अधिक है। स्वतंत्र ग्रंथ कम हैं। अपभ्रंश साहित्य के प्रधान ग्रंथ सनसेरास, पउमचरिउ तथा भविसयत्त कहा आदि हैं।

ग. आधुनिक भारतीय आर्य भाषा-काल (१००० ई० से वर्तमान समय तक)

संस्कृत तथा प्राकृत की भाँति जब अपभ्रंश का भी साहित्य में प्रयोग होने लगा तो उसको भी व्याकरण की शृंखला में बाँधा गया पर स्वभावतः जनभाषा को विकसित होने से रोका नहीं जा सका। फलतः व्याकरणबद्ध अपभ्रंश भाषाएँ मृत हो गईं और उनके विकसित रूप हिंदी, बँगला आदि हमारे सामने आए जिन्हें आधुनिक भारतीय आर्य भाषा कहते हैं। अस्तित्व की दृष्टि से आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का समय लगभग १००० ई० से आज तक है। साहित्य में इनका प्रयोग लगभग १३वीं सदी या उसके बाद से होने लगा। आधुनिक भाषाओं के विकास के संबंध में एक बात की ओर संकेत कर देना आवश्यक है। आगे हम लोग विभिन्न अपभ्रंशों से विभिन्न आधुनिक आर्य भाषाओं के संबंध की बात करेंगे पर इसका अर्थ यह नहीं कि जिसका जिस अपभ्रंश से संबंध है वह केवल उसी से निकली है। एक क्षेत्र के लोगों का संपर्क अन्य क्षेत्रों से भी कम नहीं था। इसी कारण सभी आधुनिक भाषाओं पर वहाँ की मूल अपभ्रंश भाषा के अतिरिक्त आस-पास की अपभ्रंशों का भी कम प्रभाव नहीं पड़ा है।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से आधुनिक भारतीय आर्य भाषा के रूप में हिंदी कोई एक भाषा नहीं है, अपितु इसके अंतर्गत राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी एवं पहाड़ी ये पाँच भाषाएँ आती हैं। इसके अतिरिक्त सिंधी, लहँदा, पंजाबी, गुजराती, मराठी, आसामी, बँगला तथा उड़िया—ये ८ भाषाएँ भी आधुनिक भारतीय आर्य भाषा के अंतर्गत हैं। इस प्रकार आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ कुल १३ हैं।

४

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ

पिछले अध्याय में कहा जा चुका है कि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ १३ हैं। यहाँ इनका संक्षिप्त परिचय तथा वर्गीकरण दिया जा रहा है।

क. परिचय

लहँदा—'लहँदा' शब्द पंजाबी भाषा का है जिसका अर्थ पश्चिम या सूर्यास्त की दिशा है। इसी आधार पर लहँदा बोली का अर्थ पश्चिम की बोली होता है। लहँदा यथार्थतः पश्चिमी पंजाब के पश्चिमी भाग की भाषा है भी। इसका क्षेत्र पाकिस्तान में है। लहँदा के अन्य नाम हिंदकी, जटकी, डिलाही तथा पश्चिमी पंजाबी आदि भी हैं। इसका जन्म केकय अपभ्रंश से हुआ है पर इस पर आर्य परिवार की दरद शाखा का प्रभाव बहुत अधिक है। इसी कारण यह पंजाबी से भिन्न है। ग्राम गीतों के अतिरिक्त इसमें साहित्य नहीं है। इसकी अपनी लिपि लंडा है यद्यपि लोग फारसी लिपि का ही प्रायः प्रयोग करते हैं। इसकी पोठवारी तथा मुल्तानी आदि कई बोलियाँ हैं।

पंजाबी—पंजाबी पश्चिमी पंजाब के पूर्वी तथा पूर्वी पंजाब के पश्चिमी अर्थात् मध्य पंजाब की भाषा है। केकय अपभ्रंश से इसकी भी उत्पत्ति हुई है पर इस पर दरद की अपेक्षा शौरसेनी अपभ्रंश का प्रभाव अधिक है। इसकी भी लिपि लंडा थी पर सिक्खों के गुरु अंगद ने उसे सुधार कर गुरुमुखी लिपि को जन्म दिया और अब वही प्रचलित है। कुछ लोग फारसी लिपि

का भी प्रयोग करते हैं। पंजाबी पर अरबी--फारसी का भी प्रभाव अधिक है। इसकी एक बोली जम्मू में बोली जाती है जिसका नाम 'डोगरी' है। इसकी लिपि 'टाकरी' है। इसमें साहित्य है पर अधिक नहीं।

सिंधी--यह सिंध प्रांत की भाषा है। इसका संबंध ब्राचड़ अपभ्रंश से है। इस पर अरबी तथा फारसी का प्रभाव अधिक है। यहाँ गुरुमुखी, फारसी तथा देवनागरी तीनों ही के विकृत रूपों का प्रयोग होता है। सिंधी में साहित्य अधिक नहीं है। इसका प्रसिद्ध ग्रंथ 'शाहजो रिशालो' है। इसकी प्रधान पाँच बोलियाँ बिचोली, लारी, सिरैकी, थरेली तथा कच्छी हैं। कच्छी कच्छ द्वीप में बोली जाती है, जिसमें गुजराती का अधिक मिश्रण है।

गुजराती--गुजरात, बड़ौदा तथा कुछ अन्य छोटे-छोटे राज्यों की यह भाषा है। नागर अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से इसका विकास हुआ है। गुजराती में प्राचीन साहित्य अधिक नहीं था पर आधुनिक साहित्य बहुत है। इस पर फारसी भाषा का प्रभाव अधिक है। पहले यह नागरी लिपि में लिखी जाती थी पर अब इसकी अपनी लिपि है जो नागरी से विकसित हुई है। इसमें बोलियाँ प्रायः नहीं के बराबर हैं।

राजस्थानी--इसका क्षेत्र राजस्थान है। राजस्थानी का नागर अपभ्रंश से विकास हुआ है। राजस्थान की प्रधान चार बोलियाँ मेवाती या अहीरवाटी, जयपुरी या हाड़ौती, मारवाड़ी या मेवाड़ी तथा मालवी हैं। यहाँ महाजनी लिपि का प्रचार है। यों साहित्य के क्षेत्र में हिंदी भाषा तथा नागरी लिपि ही प्रचलित है। अब राजस्थान प्रांत के निर्माण के बाद लोगों में राजस्थानी के प्रति अधिक प्रेम जगा है और उसे भारतीय संघ द्वारा स्वीकृत भाषाओं की सूची में रखवाने के लिए लोग प्रयत्नशील हैं। राजस्थानी का पुराना साहित्य मारवाड़ी तथा डिंगल में है। दुरसाजी तथा पृथ्वीराज आदि इसके पुराने साहित्यिक हैं।

राजस्थानी की एक शाखा भीली है जो गुजराती क्षेत्र और उदयपुर

के बीच में बोली जाती है। इसमें गुजराती का मिश्रण इतना अधिक है कि यह गुजराती की एक बोली सी ज्ञात होती है।

पश्चिमी हिन्दी—डा० श्यामसुन्दर दास आदि विद्वान इसे हिंदी कहना अधिक उचित समझते हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने इसे मध्यदेश की वर्तमान भाषा कहा है। पश्चिमी हिंदी क्षेत्र में खड़ी बोली, ब्रज, बाँगरू, कनौजी, और बुंदेली का क्षेत्र आता है। या यों कहिए कि पश्चिमी हिंदी के अंतर्गत खड़ी बोली, बाँगरू, ब्रज, कनौजी तथा बुंदेली ये पाँच बोलियाँ हैं। खड़ी बोली आज हिंदी, उर्दू तथा हिंदुस्तानी आदि रूपों में हिंदी प्रदेश की भाषा तथा हिंदुस्तान एवं पश्चिमी पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा है। ब्रज हिन्दी के आदिकाल के कुछ काल से लेकर भक्ति, रीति तथा आधुनिक काल तक साहित्यिक (विशेषतः पद्य) की भाषा रही है। शेष बोलियों का विशेष साहित्यिक महत्व नहीं है। बुंदेली शब्दों का अवश्य किसी-किसी कवि (उदाहरणतः भूषण) की भाषा में कभी-कभी दर्शन हो जाता है। पैदाइश की दृष्टि से पश्चिमी हिंदी का संबंध शौरसेनी अपभ्रंश से है। पश्चिमी हिंदी क्षेत्र में देवनागरी, उर्दू तथा महाजनी—इन तीन लिपियों का प्रचार है। अब उर्दू का प्रचार कम होता जा रहा है। महाजनी केवल बही-खाते तक ही सीमित है।

पूर्वी हिन्दी—बिहारी और पश्चिमी हिंदी के बीच में पूर्वी हिंदी का क्षेत्र है। इसका संबंध अर्धमागधी अपभ्रंश से है। इसके कुछ लक्षण पूर्वी हिन्दी से तथा कुछ बिहारी से मिलते-जुलते हैं। इसके अन्तर्गत तीन बोलियाँ अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी हैं। अवधी को कौसली भी कहते हैं। दक्षिणी-पश्चिमी अवध को बैसवाड़ा कहते हैं और उसी के नाम पर वहाँ की अवधी बैसवारी या बैसवाड़ी नाम से प्रसिद्ध है। अवधी भक्ति तथा रीतिकाल में साहित्यिक भाषा थी। जायसी तथा तुलसी इसके अमर कवि हैं। आजकल इस क्षेत्र की साहित्यिक भाषा खड़ी बोली है। इस क्षेत्र में नागरी तथा कैथी लिपि का प्रयोग होता है।

बिहारी—बिहार की भाषा बिहारी है। पर इसमें बिहार के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के गोरखपुर, कुछ बस्ती, देवरिया, कुछ जौनपूर, बनारस, कुछ मिरज़ापुर, गाज़ीपुर तथा बलिया एवं उधर छोटानागपुर, के ज़िले भी हैं। बिहारी का संबंध और उसकी समानता यों तो पश्चिमी तथा पूर्वी हिंदी से है पर मूलतः यह बंगाली तथा उड़िया आदि की बहिन है। उत्पत्ति की दृष्टि से उनकी माता मागधी अपभ्रंश से ही इसका भी संबंध है। इस क्षेत्र में भोजपुरी, मैथिली (मिथिला) और मागही (पटना, गया) तीन बोलियाँ हैं। भोजपुरी का क्षेत्र काफी बड़ा है तथा वह मैथिली मगही से भिन्न है, इसी कारण डा० सुनीति कुमार चटर्जी उसका एक अलग वर्ग मानने के पक्ष में हैं। मैथिली और मगही एक दूसरे से मिलती-जुलती हैं। साहित्य की दृष्टि से बिहारी की तीनों बोलियों में केवल मैथिली का ही महत्व है। विद्यापति मैथिली के अमर कवि हैं। इस क्षेत्र में तीन लिपियाँ हैं :— नागरी, कैथी और मैथिली। अब इस क्षेत्र की साहित्यिक भाषा खड़ी बोली हिंदी ही है।

पहाड़ी—उत्पत्ति की दृष्टि से पहाड़ी भाषाओं का संबंध खश अपभ्रंश से जोड़ा जाता है। पहाड़ी भाषा का क्षेत्र नेपाल, गढ़वाल, कमायूँ, जौनसार सिरमौर तथा शिमला आदि है। इसकी तीन शाखाएँ हैं जिन्हें किसी उचित नाम के अभाव में पूर्वी पहाड़ी, मध्यवर्ती पहाड़ी और पश्चिमी पहाड़ी कह सकते हैं।

पूर्वी पहाड़ी की मुख्य बोली नेपाली है। इसे परबतिया भी कहते हैं। यह नागरी लिपि में लिखी जाती है। इसमें थोड़ा सा आधुनिक साहित्य है। मध्यवर्ती पहाड़ी के गढ़वाली और कमायूनी दो रूप हैं। इसकी भी लिपि नागरी है। इसमें भी कुछ आधुनिक साहित्य है। पश्चिमी पहाड़ी में लगभग ३० बोलियाँ हैं जिनमें जौनसारी, चंबाली तथा सिरमौरी प्रधान हैं। इनमें साहित्य नहीं के बराबर है। नागरी के अतिरिक्त कुछ बोलियाँ टक्करी में भी लिखी जाती हैं।

सभी पहाड़ी बोलियों एवं भाषाओं से राजस्थानी विशेषतः जयपुरी और मारवाड़ी का कुछ साम्य है। इसका कारण यह है कि राजनीतिक कारणों से बहुत से लोग राजस्थान से आकर यहाँ बस गए थे। साथ ही उसके पूर्व कुछ गूजर इस क्षेत्र से उजड़ कर राजस्थान में जा बसे थे।

मराठी—महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी का जन्म हुआ है। बंबई, पूना, बरार तथा नागपुर के आस-पास इसका क्षेत्र है। मराठी में प्रधान तीन बोलियाँ—मराठी, कोंकणी तथा बरारी—हैं। पूना के पास की बोली मराठी ही साहित्यिक भाषा है। इन तीन के अतिरिक्त इसकी एक बोली हल्बी भी है जो बस्तर में बोली जाती है। इस पर पड़ोसी द्राविड़ भाषाओं का बहुत प्रभाव पड़ा है। मराठी की अपनी लिपि मोड़ी है जिसके जन्मदाता बालाजी अवाजी थे यद्यपि नागरी लिपि का ही प्रयोग अधिक होता है। मराठी साहित्य बहुत प्राचीन न होते हुए भी धनी है।

बँगला (बंगाली)—बँगला बँगाल की भाषा है। इसके पूर्वी और पश्चिमी दो भेद हैं। पश्चिमी भाषा का क्षेत्र पश्चिमी बँगाल है जो भारत में है तथा पूर्वी का पूर्वी बंगाल है जो पाकिस्तान में है। बँगला भाषा मागधी अपभ्रंश से निकली है। इसमें संस्कृत शब्द अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की तुलना में अधिक हैं। बँगला की अपनी अलग लिपि है जो नागरी से निकली है। बँगाल में तीन बोलियाँ हैं। हुगली के पास की बोली टकसाली है। बंगला-साहित्य बहुत धनी है। टैगोर ही एक मात्र भारतीय हैं जिन्हें नोबुल पुरस्कार मिल चुका है। ऐसी स्थिति में आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में बँगला का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। बँगला साहित्य ने हिंदी को बहुत प्रभावित किया है।

असमी (आसामी)—यह आसाम या असम की भाषा है। आसामी लोग इसे असमिया भी कहते हैं। बँगला तथा उड़िया की भाँति यह भी मागधी अपभ्रंश से विकसित हुई है। यह बँगला से इतनी मिलती-जुलती

है कि बहुत से लोग इसे बँगला से निकली मानते हैं पर यथार्थतः यह बात नहीं है। असमी, उड़िया तथा बँगला आपस में बहने हैं। असमी की लिपि बँगला लिपि का ही एक सुधरा रूप है। असमी साहित्य प्राचीन है। भारतीय भाषाओं में एक सबसे चित्य बात यह है कि इनमें ऐतिहासिक साहित्य नहीं है पर असमी में यह बात नहीं है। वहाँ प्राचीन साहित्य में ऐतिहासिक साहित्य पर्याप्त है। असमी में बोलियाँ प्रायः नहीं है।

उड़िया--इसे ओद्री, ओड़ी या उत्कली भी कहते हैं। इसका संबंध मागधी अपभ्रंश से है। यह बँगला से इतनी मिलती-जुलती है कि बहुत दिनों तक लोग इसे बँगला की एक बोली मानते रहे हैं। उड़ीसा में उड़िया के अतिरिक्त केवल एक बोली है जिसका नाम भत्री है। भत्री में मराठी तथा द्रविड़ शब्द बहुत हैं। उड़िया में भी मराठी और द्रविड़ (विशेषतः तेलगू) शब्दों का आधिक्य है। इसका कारण है उड़ीसा पर मराठों (भोंसलों) और तैलंगों का बहुत दिनों तक राज्य होना। यहाँ की लिपि नागरी का ही रूपांतर है जो बड़ी कठिन है। उड़िया साहित्य संपन्न है। उसका कृष्ण-विषयक साहित्य अधिक प्रसिद्ध है।

ख. वर्गीकरण

हार्नली[1] ने आर्यों के भारत में दो वर्गों में आने का अनुमान लगाया था और उस आधार पर आधुनिक आर्य भाषाओं को अंतरंग और बहिरंग दो वर्गों में बाँटा था। ग्रियर्सन ने इस सिद्धान्त को ही पर्याप्त उदाहरणों के साथ कुछ और आगे बढ़ाया और इस आधार पर उन्होंने लिंग्विस्टिक सर्वे की भूमिका में आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को तीन--बहिरंग, मध्यवर्ती तथा अंतरंग--वर्गों में बाँटा। ग्रियर्सन का पूरा वर्गीकरण इस प्रकार है :

---

[1]देखिए परिशिष्ट 'क'

अ. बहिरंग वर्ग

क. पश्चिमोत्तरी उपवर्ग

१. लहँदा
२. सिंधी

ख. दक्षिणी उपवर्ग

३. मराठी

ग. पूर्वी उपवर्ग

४. असमी (आसामी)
५. बंगाली (बँगला)
६. उड़िया
७. बिहारी

आ. मध्यवर्ती वर्ग

८. पूर्वी हिंदी

इ. अंतरंग वर्ग

क. केंद्रीय उपवर्ग

९. पश्चिमी हिंदी
१०. पंजाबी
११. गुजराती
१२. भीली
१३. खानदेशी
१४. राजस्थानी

ख. पहाड़ी उपवर्ग

१५. पूर्वी पहाड़ी
१६. मध्यवर्ती पहाड़ी
१७. पश्चिमी पहाड़ी

इस वर्गीकरण का आधार था बहिरंग तथा अंतरंग की शाखाओं में आपसी ध्वनि-साम्य। उदाहरणार्थ अन्तरंग भाषाओं में 'स' का उच्चारण परिवर्तित नहीं हुआ है पर बहिरंग में वह 'श' या 'ष' हो गया है। संस्कृत के बहुत से शब्दों की 'स' ध्वनि हिंदी में तो 'स' ही है, पर बँगला आदि में 'श' हो गई है। पश्चिमोत्तरी उपवर्ग की लहँदा तथा सिंधी आदि में 'स' का 'ह' हो जाता है।

ध्वनि के अतिरिक्त संयोग-वियोग अवस्था के आधार पर भी इनमें अंतर है। अंतरंग वर्ग की भाषाएँ वियोगावस्था में हैं पर बहिरंग वर्ग की संयोगावस्था में। बँगला में हिंदी 'राम की' की भाँति अलग-अलग न कह कर 'रामेर' कहते हैं।

इसी प्रकार की कुछ और भी चीज़ें हैं।

डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने ग्रियर्सन के इस मत का पर्याप्त प्रमाण देते हुए विरोध किया है। इस संबंध में उन्होंने हार्नली तथा भाषा-विज्ञान विशारद् चंदा (जिनका मत भी ग्रियर्सन से मिलता-जुलता है) की बातों का विस्तार से विवेचन करते हुए वेब्स के आधार पर निम्नांकित अधिक सरल और वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रस्तुत किया है--

क. उदीच्य वर्ग

१. सिंधी
२. लहँदा
३. पंजाबी

ख. प्रतीच्य वर्ग

४. गुजराती
५. राजस्थानी

ग. मध्यदेशीय वर्ग

६. पश्चिमी हिंदी

घ. प्राच्य वर्ग

७. पूर्वी हिन्दी
८. बिहारी
९. उड़िया
१०. बँगला
११. असमी

ङ. दाक्षिणात्य वर्ग

१२. मराठी

ऊपर हम लोग कह चुके हैं कि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ १३ हैं। यहाँ चटर्जी के वर्गीकरण में केवल १२ भाषाएँ हैं। चटर्जी पहाड़ी बोलियों को अलग न मानकर राजस्थानी का ही रूपान्तर मानते हैं। चटर्जी का वर्गीकरण आज ग्रियर्सन की अपेक्षा अधिक मान्य है।

५

हिन्दी भाषा का इतिहास

किसी भी भाषा के जन्म की एक निश्चित तिथि नहीं दी जा सकती क्योंकि उसकी उत्पत्ति में भी सदियाँ गुज़र जाती हैं। इस बात को दृष्टि में रखते हुए भी अध्ययन की सुविधा के लिए मोटे रूप से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का उत्पत्ति-काल १००० ई० के आस-पास माना जा सकता है। हिंदी भी एक आधुनिक भारतीय आर्य भाषा है। अत: उसका भी जन्म-काल यही है। १००० ई० के आस-पास उस क्षेत्र में जिसमें आज हिंदी भाषा है पाँच अपभ्रंश भाषाएँ थीं। राजस्थान में नागर अपभ्रंश थी, अवधी बघेली तथा छत्तीसगढ़ी क्षेत्र में अर्धमागधी अपभ्रंश थी। भोजपुरी, मैथिली तथा मगही क्षेत्र में मागधी अपभ्रंश थी तथा पहाड़ी क्षेत्र में खस अपभ्रंश थी। इन पाँचों अपभ्रंशों से हिंदी नाम से पुकारे जाने वाली हिंदी की पाँच उपभाषाओं का विकास हुआ जिसे इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं :—

अपभ्रंश	हिंदी की उपभाषाएँ
१. नागर अपभ्रंश	राजस्थानी
२. शौरसेनी अपभ्रंश	पश्चिमी हिंदी (खड़ी बोली, ब्रज, कनौजी तथा बुंदेली आदि)
३. अर्धमागधी अपभ्रंश	पूर्वी हिंदी (अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी)
४. मागधी अपभ्रंश	बिहारी (भोजपुरी, मैथिली तथा मगही)
५. खस अपभ्रंश	पहाड़ी (गढ़वाली, कमायूनी तथा नेपाली आदि)

ये ही पाँचों रूप मूलतः सामूहिक रूप से हिंदी भाषा हैं, यद्यपि आज हिंदी का अर्थ इनमें से दूसरे रूप अर्थात् पश्चिमी हिंदी की 'खड़ीबोली' से लिया जाता है, जो आज की हमारी साहित्यिक भाषा एवं भारत की राष्ट्रभाषा है।

यह है संक्षेप में हिंदी भाषा का उद्भव। हिंदी भाषा के इतिहास को समझने के लिए उद्भव के बाद उसके विकास पर विचार करना होगा। हिंदी का जन्म १००० ई० के आस-पास हुआ। तब से आज तक लगभग १००० वर्षों तक हिंदी का विकास होता आया है। इस एक हज़ार वर्षों के विकास को मोटे रूप से तीन भागों में बाँटा जा सकता है :—

१. प्राचीन काल (१००० ई० से १५०० ई० तक)
२. मध्य काल (१५०० से १८०० ई० तक)
३. आधुनिक काल (१८०० से आज तक)

अब इन तीनों पर संक्षेप में विचार किया जा सकता है।

क. प्राचीन काल

प्राचीनकालीन हिंदी की अवस्था जानने के लिए तत्कालीन ऐतिहासिक लेखों तथा साहित्यिक ग्रंथों आदि का सहारा लिया जा सकता है। जहाँ तक ऐतिहासिक लेखों का संबंध है कोई प्रामाणिक चीज़ अभी तक ऐसी नहीं मिल सकी है जिससे तत्कालीन हिंदी पर प्रकाश पड़ सके। साहित्यिक ग्रंथों में अपभ्रंश, चारण, धर्म संबंधी तथा दक्खिनी हिंदी के काव्यग्रंथ अवश्य उपलब्ध हैं। इस दृष्टि से सिद्ध, नाथ, रासो, विद्यापति, जगनिक, खुसरो, कबीर तथा ख्वाज़ा बंदा नेवाज का साहित्य पठनीय है। दुःख है कि दो-एक अपवादों को छोड़ कर इनमें किसी का भी शुद्ध पाठ अभी तक हमारे समक्ष नहीं आ सका है। भाव या अर्थ की दृष्टि से तो अशुद्ध पाठ से भी कुछ काम चल जाता है पर भाषा के अध्ययन के लिए पा की शुद्धता का बहुत महत्व है।

मोटे रूप से तत्कालीन हिंदी के विषय में इतना ही कहा जा सकता है

कि प्राचीन काल के पूर्वार्ध में प्रायः हिंदी भाषा अपभ्रंश के शब्दों तथा शब्द-रूपों से बोझिल थी। उत्तरार्ध में वह अपने पैर पर स्वतंत्र रूप से खड़ी तो हो गई पर तब तक हिंदी प्रदेश विदेशियों के अधिकार में चला गया। अतः स्वभावतः अरबी तथा फ़ारसी के शब्द भाषा में भर गए। साहित्य में उस समय प्रमुख रूप से राजस्थानी या डिंगल तथा ब्रज दो भाषाएँ प्रयोग में थीं। दक्खिनी हिंदी के साहित्य की भाषा पुरानी खड़ी बोली थी। खुसरो में भी इसके वाक्य कहीं-कहीं मिल जाते हैं। कबीर आदि में भोजपुरी के भी प्रयोग मिलते हैं। विद्यापति ने मैथिली का प्रयोग किया है।

ख. मध्य काल

मध्य काल में आते-आते हिंदी भाषा की विभिन्न शाखाओं का स्वरूप और निखर गया पर साथ ही अरबी, फारसी तथा तुर्की के शब्द उनमें और भी घुस आए तथा वे घिस-पिट कर पूर्णतः अपने हो गए। इस युग की भाषा के अध्ययन के लिए संतधारा, सूफीधारा, रामधारा, कृष्णधारा, दक्खिनी हिंदी एवं उर्दू धारा तथा रीतिकालीन साहित्य का अध्ययन किया जा सकता है। इस आधार पर भाषा के विषय में निम्नांकित बातें कही जा सकती हैं—साहित्य में अवधी, ब्रज तथा तुतलाती खड़ी बोली का प्रयोग होता रहा। जिन प्रदेशों के साहित्यिकों ने इन भाषाओं में लिखा स्वभावतः उनके प्रदेश की भी कुछ छाप इन साहित्यिक भाषाओं में आ गई। विशेषतः उनकी अपनी रचनाओं में। धार्मिक आन्दोलनों के कारण लोगों का ध्यान संस्कृत की ओर स्वभावतः गया। अतः साहित्य में संस्कृत से भी उधार शब्द लिए गये। रामचरितमानस से यह बात स्पष्ट हो जाती है। इसी प्रकार रीतिकाल के वीर रस के लेखकों ने वीर ध्वनि लाने के लिए व्यर्थ में अपभ्रंश के शब्दों के प्रयोग किए तथा ध्वनि के आधार पर नए शब्दों को भी गढ़ा। उत्तरार्ध में उर्दू कवियों में खड़ी बोली का काफी निखरा रूप प्रयुक्त होने लगा। साथ ही उसमें अरबी-फारसी शब्दों की संख्या भी अपेक्षाकृत

बहुत अधिक होती गई। यहाँ तक कि अन्त में उर्दू सामान्य हिंदी जनता के लिए बोधगम्य भी नहीं रह ग ।

ग. आधुनिक काल

आधुनिक काल में खड़ी बोली का रूप और निखर आया तथा उसके आगे धीरे-धीरे ब्रज आदि साहित्यिक भाषाएँ दबने लगीं। भारतेंदु काल तक आते-आते हिंदी गद्य विकसित हो गया और वह खड़ी बोली के माध्यम से लिखा जाने लगा। आगे चल कर महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग तक आते-आते कविता में भी खड़ी बोली का बोलबाला हो गया। ब्रज तथा अवधी आदि मध्य युग की साहित्यिक भाषाएँ साहित्यिक क्षेत्र से लगभग अलग हो गईं।

शब्दों की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी में बहुत परिवर्तन हुए। आर्य समाज आदि के आंदोलनों के कारण संस्कृत के अध्ययन की प्रगति बहुत बढ़ गई। अत: स्वभावत: संस्कृत के बहुत अधिक शब्द अपना लिए गए। प्राकृत तथा अपभ्रंश से आए तद्भव एवं अरबी, फारसी तथा तुर्की के शब्दों का शुद्ध साहित्यिक हिंदी में प्राय: बहिष्कार होने लगा। यूरोपीय लोगों के संपर्क से बहुत से अँग्रेज़ी, पुर्तगाली तथा फ्रांसीसी शब्द प्रयोग में आ गए। बँगला तथा मराठी आदि प्रादेशिक भाषाओं से भी शब्द लिए गए। इस प्रकार आज की साहित्यिक हिंदी में अनेकानेक भाषाओं के शब्दों को अपनाया गया है। इधर एक सबसे बड़ी विशेषता यह आई है कि लोक भाषा के शब्दों को अब प्रश्रय दिया जा रहा है। अश्क, राहुल तथा नागार्जुन की पुस्तकों में इस प्रकार के बहुत से उदाहरण खोजे जा सकते हैं।

आधुनिक हिंदी साहित्य के क्षेत्र में साहित्यिक हिंदी या खड़ी बोली का बोलबाला है, पर अब प्रादेशिक भाषाओं या बोलियों में भी साहित्य रचना की प्रवृत्ति बढ़ रही हैं। ऐसी स्थिति में उस दिन का भी स्वप्न देखा जा सकता है जब हिंदी की प्राय: सभी बोलियाँ साहित्यिक भाषा का रूप धारण कर लेंगी।

६

हिन्दी और उसके साहित्यिक रूप

हिंदी भाषा के लिए हिंदी शब्द का प्रयोग बहुत पुराना नहीं है। पहले इसे भाषा, देश भाषा तथा भाखा आदि कहते थे। हिंदी या हिंद शब्द मूलतः फारसी का है। 'हिंद' के लिए भारतीय शब्द 'सिंधु' था। 'स' का 'ह' हो जाने से 'सिंधु' का 'हिंद' हो गया। 'हिंद' का फारसी में अर्थ भारत या हिंदुस्तान था। इसी आधार पर 'हिंदी' शब्द बना जिसका अर्थ 'हिंदुस्तान का निवासी' या 'हिंदुस्तान की भाषा' है। इस दृष्टि से भारत की सभी भाषाएँ हिंदी हैं पर अब उसका अर्थ संकुचित हो गया है और 'हिंदी' शब्द उस भाषा के लिए प्रयुक्त होता है जो उत्तर में नेपाल और शिमला की सीमा तथा अंबाला से लेकर पश्चिम में जैसलमेर, पूर्व में भागलपुर तथा दक्षिण में रायपुर एवं खँडवा तक फैली है और जिसके अन्तर्गत खड़ी बोली, बाँगरू, ब्रज, कन्नौजी, बुंदेली, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, मैथिली, मगही, मारवाड़ी, जयपरी, मेवाती, मालवी तथा पहाड़ी—ये १६ ग्रामीण बोलियाँ हैं।

आज हिंदी के तीन साहित्यिक रूप हैं। १. उच्च हिंदी या हिंदी, २. उर्दू तथा ३. हिन्दुस्तानी। इन तीनों ही साहित्यिक रूपों का आधार खड़ी बोली है।

क. हिंदी

हिंदी को उच्च हिंदी या साहित्यिक हिंदी भी कहते हैं। इसका आधार मेरठ के पास की खड़ी बोली है। इसके शब्द-समूह में हिंदी के अपने शब्दों के अतिरिक्त संस्कृत शब्दों का भी बाहुल्य है। इसके अतिरिक्त कुछ शब्द अंग्रेजी, पुर्तगाली, अरबी, फारसी तथा तुर्की आदि भाषाओं के भी हैं। यही हिंदी आज के पूरे हिंदी प्रदेश के साहित्य तथा शिक्षा का माध्यम है। इसके अतिरिक्त भारतीय संघ की राष्ट्रभाषा भी यही है।

ख. उर्दू

हिंदी की वह शैली जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्द प्रायः नहीं के बराबर हैं तथा अरबी, फारसी एवं तुर्की शब्दों का बाहुल्य है तथा जिसके व्याकरण पर भी कुछ अंशों में अरबी-फारसी का प्रभाव पड़ा है 'उर्दू' नाम से पुकारी जाती है। हिंदी-प्रदेश के मुसलमानों की भाषा होने के साथ पश्चिमी पाकिस्तान की यह राष्ट्रभाषा भी है।

मुसलमानों ने जब भारत में अपना राज्य स्थापित किया तो उन्हें स्वभावतः भारतीयों से संपर्क स्थापित करने के लिए किसी भाषा की आवश्यकता का अनुभव हुआ। उनका केन्द्र दिल्ली था, अतः उसके पास की भाषा खड़ी बोली को उन्होंने अपनाया। उनके अपने शब्द-समूह एवं खड़ी बोली के मिश्रण से एक नई भाषा का विकास हुआ। इसका व्याकरण तो खड़ी बोली का था पर शब्द-समूह में अरबी-फारसी के शब्द अधिक थे। इस भाषा का प्रयोग पहले फौज की बाजारों में होता था, अतः इस भाषा को 'जबान-उर्दू-ए-मुअल्ला'[1] कहा गया। यही भाषा बाद में 'उर्दू' कहलाई और शासक वर्ग में प्रचलित भाषा होने के कारण हिंदू मुसलमान सभी के गले का हार बनी। उत्तर भारत से यह दक्षिण में गई और वहाँ 'दक्खिनी' के रूप में मुसलमान दरबारों तथा सूफियों में इसका प्रचार रहा। वहीं सबसे पहले उर्दू का साहित्य में प्रयोग हुआ। 'वली' इसके पहले प्रमुख कवि थे। उन्हीं की देखादेखी लखनऊ तथा दिल्ली में भी उर्दू में कविता होने लगी। दक्खिनी उर्दू में अरबी-फारसी शब्द अधिक नहीं थे पर जब उत्तर भारत में यह साहित्य की भाषा बनी तो अरबी-फारसी शब्दों से यह भर गई। इस मिश्रण के कारण ही इसे 'रेख्ता' अर्थात् 'मिश्रित' कहा गया। इसका स्त्रियों में प्रयुक्त रूप रेख्ता के आधार पर 'रेख्ती' कहलाया। धीरे-धीरे शब्दसमूह के अतिरिक्त इसके व्याकरण पर भी अरबी-फारसी का प्रभाव

---

[1] 'उर्दू' तुर्की शब्द है और इसका अर्थ खेमा या बाजार आदि है।

पड़ा और कालान्तर में अरबी-फारसी से इसका इतना लगाव हुआ कि मुसलमानों की धार्मिक भाषा के रूप में मुसलमानों में इसका आदर होने लगा। उर्दू की लिपि फारसी लिपि ही है, जिसमें कुछ नए अक्षर जोड़ दिये गये हैं।

भारतवर्ष में अब उर्दू का प्रचार धीरे-धीरे कम हो रहा है। सच पूछिए तो उर्दू हिंदी की ही एक शैली मात्र है। उसके पूरे साहित्य को हिंदी वालों को अपना साहित्य समझना चाहिए।

ग. हिन्दुस्तानी

देश, स्थान या प्रदेश के नाम पर वहाँ की भाषा के नामकरण की परंपरा नवीन नहीं है। हमारे यहाँ प्राकृतों तथा अपभ्रंशों का नाम भी इसी आधार पर था। आधुनिक भाषाओं में भी बहुतों के नाम इसी आधार पर हैं। 'हिंदुस्तानी' नाम भी उसी परंपरा में है। हिंदुस्तान के आधार पर यहाँ की भाषा को यूरोपीयों ने सबसे पहले 'इंडोस्तानी' या 'हिंदुस्तानी' कहा। आरंभ में इसका प्रयोग उर्दू के लिए था पर बाद में 'हिंदुस्तानी' से आशय उस उर्दू भाषा का लिया जाने लगा जो साहित्यिक या अदबी उर्दू की अपेक्षा सरल और बोलचाल के समीप थी। इसमें अरबी-फारसी के शब्द अपेक्षाकृत कम तथा बोल-चाल के एवं प्रचलित अंग्रेजी आदि शब्द अधिक रहते हैं। सच पूछिए तो विशुद्ध हिंदुस्तानी ही जिसके गांधीजी भी पक्ष में थे भारत की आम भाषा होने की क्षमता रखती है। यह उर्दू की भाँति अरबी-फारसी या हिंदी की भाँति संस्कृत के प्रभाव से बोझिल न होने के कारण अधिक सरल है। पर इधर हिंदुस्तानी के नाम पर जो भाषा सामने आई है वह उर्दू से भिन्न नहीं कही जा सकती। उसमें यदि कुछ हिंदी या संस्कृत शब्दों को स्थान दिया भी गया है तो या तो उन्हें बिगाड़ कर या फिर नए रूप में गढ़कर।

हिंदुस्तानी में लिखित कुछ साहित्य भी प्रकाशित हो चुका है।

हिन्दी की उपभाषाएँ और ग्रामीण बोलियाँ

इसी अध्याय के आरंभ में हिंदी भाषा के इतिहास पर विचार करते समय हम हिंदी की पाँच उपभाषाओं (पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी बिहारी, राजस्थानी और पहाड़ी) का नाम ले चुके हैं तथा उनसे संबंधित अपभ्रंश का भी उल्लेख कर चुके हैं। इन पाँच उपशाखाओं के अन्तर्गत हिंदी की कुल १८ प्रादेशिक बोलियाँ हैं—

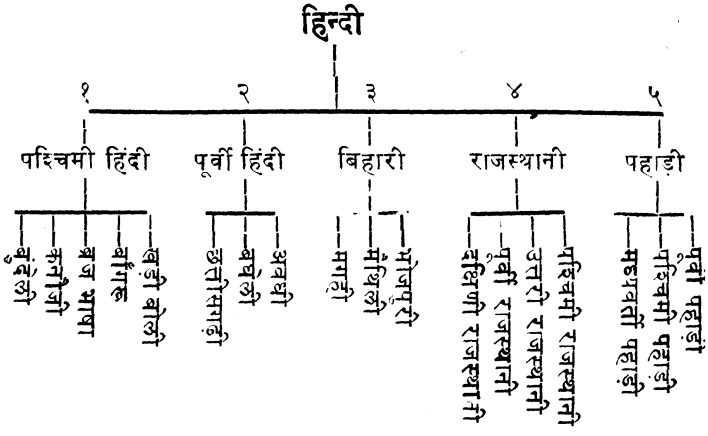

क. पश्चिमी हिन्दी

१. **खड़ी बोली**—रामपुर राज्य, बिजनौर, मुरादाबाद, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून के मैदान, पटियाला, कलसिया तथा अंबाला के गाँवों की बोली खड़ी बोली है। खड़ी बोली में मुसलमानी प्रभाव के फलस्वरूप अरबी-फारसी शब्द हिंदी की अन्य बोलियों की अपेक्षा अधिक घुस

गए हैं। यद्यपि जैसा कि स्वभावतः होता है इन शब्दों को आम जनता की भाषा में तद्भव या अर्धतद्भव हो जाना पड़ा है।

राजनीतिक कारणों से खड़ी बोली आज भाषा हो गई है तथा उच्च हिंदी, उर्दू एवं हिंदुस्तानी—इन तीन रूपों में प्रचलित है। यही भारत और पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा एवं हिंदी क्षेत्र की साहित्यिक भाषा भी है। खड़ी बोली में शिष्ट तथा लोक दोनों ही प्रकार के साहित्य हैं।

२. **बाँगरू**—बाँगर प्रदेश अर्थात् दिल्ली, करनाल, रोहतक, हिसार, पटियाला नाभा तथा झींद के गाँवों की बोली बाँगरू है। इसके अन्य नाम जाटू तथा हरियानी भी हैं। इसमें भी अरबी-फारसी शब्द काफी हैं। यह बोली खड़ी बोली ही है जिस पर राजस्थानी तथा पंजाबी का मिश्रित प्रभाव पड़ा है। इसी कारण कुछ लोग इसे हिंदी की एक अलग बोली न मान कर खड़ी बोली का ही एक रूप मानते हैं। बाँगरू में लोक साहित्य है। इसे साहित्यिक भाषा बनने का गौरव कभी नहीं मिला।

३. **ब्रजभाषा**—मथुरा, आगरा, अलीगढ़, धौलपुर, गुड़गाँव, भरतपुर, करौली, ग्वालियर का पश्चिमी उत्तरी भाग, बुलंदशहर, बदायूँ, नैनीताल की तराई, एटा, मैनपुरी, बरेली, पीलीभीत तथा इटावा के गाँवों की बोली ब्रज है। शुद्ध ब्रज तो केवल मथुरा, आगरा, अलीगढ़ तथा धौलपुर में बोली जाती है। अन्य जगहों में कहीं राजस्थान की सीमा की ओर राजस्थानी प्रभाव है तो कहीं बुंदेली का और कहीं खड़ी बोली का प्रभाव है तो कहीं कन्नौजी का। कृष्ण की लीला भूमि की बोली होने के कारण कृष्ण साहित्य में इस बोली का प्रयोग हुआ और तभी से महत्व तथा आदर के लिए इसे ब्रजभाषा कहने लगे। आदि, मध्य, रीति तथा कुछ अंशों में आधुनिक काल में भी हिंदी साहित्य ब्रज भाषा में लिखा गया है। इसके प्रमुख कवि चंद, सूर, नंददास, बिहारी तथा रत्नाकर हैं। ब्रजभाषा का लोकसाहित्य भी बड़ा सम्पन्न है।

४. कन्नौजी—जिस प्रकार बाँगरू स्वतंत्र न होंकर खड़ी बोली का एक रूप मात्र है, उसी प्रकार कन्नौजी भी स्वतंत्र बोली न होकर ब्रज का एक रूप मात्र है। इसका क्षेत्र ब्रज और अवधी के बीच में फर्रुखाबाद, हरदोई, शाहजहाँपूर, इटावा तथा पश्चिमी कानपूर है। कन्नौजी कभी साहित्य में प्रयुक्त नहीं हो सकी। वहाँ के साहित्यकार ब्रजभाषा का ही साहित्य में प्रयोग करते रहे हैं। कन्नौजी की साहित्यिक निधि उसका लोक साहित्य है।

५. बुंदेली—कन्नौजी की भाँति ही बुंदेली भी ब्रज का एक रूप मात्र है। इसका क्षेत्र बुंदेलखंड है, जिसके अंतर्गत झाँसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर का कुछ भाग, भोपाल, ओड़छा, सागर, नृसिंहपूर, सिवनी तथा होशंगाबाद है। दमोह, बालाघाट, छिंदवाड़ा, पन्ना, चरखारी तथा दतिया आदि में इसके कई मिश्रित रूप मिलते हैं। बुंदेली क्षेत्र में साहित्यसाधना भी होती रही है पर लोगों ने बुंदेली को न अपना कर ब्रज को ही अपनाया है। हाँ यह अवश्य है कि इस क्षेत्र के कवियों की ब्रजभाषा पर बुंदेली की खासी छाप है।

ख. पूर्वी हिन्दी

६. अवधी—लखनऊ, रायबरेली, उन्नाव, सीतापुर, खीरी, फैजाबाद, गोंडा, बहराइच, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, बाराबंकी, इलाहाबाद, फतेहपुर तथा कानपुर और मिर्जापुर एवं जौनपुर के कुछ भागों की बोली अवधी है। बहुत पहले अवध के कुछ मुसलमान बिहार में बस गये थे। अब भी वे वहाँ अवधी ही बोलते हैं यद्यपि उनकी भाषा पर भोजपुरी का प्रभाव काफी पड़ा है। मिर्ज़ापुर एवं जौनपुर की अवधी पर भी कुछ भोजपुरी प्रभाव है तथा कानपुर की अवधी पर कन्नौजी। अवधी का भक्ति तथा रीतिकाल में साहित्य में भी प्रयोग होता रहा है। विशेषतः सूफी काव्यधारा एवं राम-काव्य धारा की यह प्रिय भाषा रही है। इधर द्वारिकाप्रसाद मिश्र ने 'कृष्णायन' लिख कर 'कृष्णधारा' से भी इसका संबंध जोड़ दिया है। अवधी

के अन्य प्रसिद्ध ग्रंथ 'पदमावत' तथा 'रामचरितमानस' हैं। अवधी का लोकसाहित्य पर्याप्त संपन्न है। अवधी को कोसली भी कहते हैं। अवध के दक्षिणी-पश्चिमी भाग का नाम बैसवाड़ा है। अतः उस आधार पर वहाँ की विशिष्ट अवधी बैसवाड़ी कही जाती है।

७. **बघेली**—जिस प्रकार कन्नौजी तथा बुंदेली तथ्यतः स्वतंत्र बोलियाँ न होकर ब्रज के रूप हैं। इसी प्रकार बघेली भी अवधी का ही दक्षिणी रूप है। इसका क्षेत्र बघेलखंड है या यों कहिए कि रीवाँ राज्य, दमोह, जबलपुर, माँडला तथा बालाघाट के ज़िलों में यह बोली जाती है। बघेली कवि अवधी में ही अपनी रचनाएँ करते रहे हैं। बघेली की साहित्यिक निधि उसका लोक साहित्य है।

८. **छत्तीसगढ़ी**—यह रायपुर एवं बिलासपुर के जिले तथा काँकेर, नंदगाँव, खैरागढ़, रायगढ़, कोरिया, सरगुजा, जयपुर तथा उदयपुर आदि राज्यों की बोली है। सीमा की भाषाओं के मिश्रण से इसके कई मिश्रित रूप भी हैं। छत्तीसगढ़ी में लोक-साहित्य पर्याप्त है। इधर इस बोली में कुछ साहित्य भी लिखा जा रहा है। छत्तीसगढ़ी के अन्य नाम लरिया या खल्ताही भी है।

ग. बिहारी

९. **भोजपुरी**—बिहार प्रान्त के आरा जिले के भोजपुर नाम के परगने 'भोजपुर' के नाम पर इस बोली का नाम भोजपुरी है। इसे कुछ लोग पूर्वी बोली भी कहते हैं। उत्तर प्रदेश के बनारस, मिर्जापुर के कुछ भाग, जौनपुर के कुछ भाग, गाज़ीपुर, बलिया, गोरखपुर, देवरिया, बस्ती, आज़मगढ़ तथा बिहार के आरा (शाहाबाद) चंपारन और सारन जिलों में बोली जाती है। इसके बोलने वाले मारिशस द्वीप में भी काफी हैं। भोजपुरी बड़ी मधुर है। इसमें शिष्ट साहित्य तो आधुनिक कुछ पुस्तकों (राहुल सांकृत्यायन आदि की) को छोड़कर प्रायः नहीं के बराबर है पर लोकसाहित्य बहुत अधिक है। भोजपुरी का क्षेत्र इतना बड़ा है और उसके बोलनेवालों

की संख्या इतनी अधिक है कि उसके कई रूप विकसित हो गए हैं, यद्यपि उनके विभिन्न रूपों का वैज्ञानिक अध्ययन अभी तक नहीं हो सका है।

१०. **मैथिली**—गंगा के उत्तर दरभंगा के आस-पास की बोली का नाम मैथिली है। मैथिली में साहित्यिक रचना भी हुई है। यों इसका लोक साहित्य भी कम आकर्षक और संपन्न नहीं है। हिंदी के प्रसिद्ध कवि विद्यापति ने अपनी पदावली में मैथिली का ही प्रयोग किया है। इस बोली की अपनी लिपि है जो नागरी से विकसित हुई है और बंगला लिपि के बहुत निकट है।

११. **मगही**—मगही नाम मागधी का बिगड़ा रूप है। मगही का केंद्र पटना और गया ज़िले हैं। इसका साहित्यिक महत्व नहीं है। इसमें लोकसाहित्य अच्छा तथा पर्याप्त है। इस क्षेत्र में कैथी लिपि का प्रचार है, यों शिक्षा, साहित्य तथा राजकीय कार्यों में नागरी लिपि का ही प्रयोग होता है।

घ. राजस्थानी

१२. **पश्चिमी राजस्थानी**—इसे मारवाड़ी भी कहते हैं। इसके अंतर्गत मेवाड़ी, ढाटकी, थली, बीकानेरी, शेखावाटी, गोड़वाड़ी तथा खेराड़ी आदि कई छोटी-छोटी बोलियाँ हैं। इसका प्रधान क्षेत्र जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर तथा उदयपुर है। इसमें साहित्य-रचना भी हुई है। इसका लोकसाहित्य भी सुन्दर है। भीली को भी पश्चिमी राजस्थानी में रक्खा जा सकता है। इस पर गुजराती का पर्याप्त प्रभाव है।

१३. **उत्तरी राजस्थानी**—अलवर राज्य तथा गुड़गाँव के समीप का प्रदेश इसका क्षेत्र है। इसकी प्रमुख बोलियाँ मेवाती तथा अहीरवाटी हैं। इसका साहित्यिक महत्व नहीं है, यों इनमें लोकसाहित्य अवश्य है। ब्रज ने मेवाती को तथा खड़ीबोली ने अहीरवाटी को सामीप्य के कारण प्रभावित किया है। इसे उत्तरी-पूर्वी राजस्थानी भी कहते हैं।

१४. **पूर्वी राजस्थानी**—इसे मध्यपूर्वी राजस्थानी भी कहते हैं। ढूँढाड़ी, तोरावाटी, जयपुरी, राजावाटी, अजमेरी, किशनगढ़ी, रिवाड़ी तथा हाड़ौती आदि कई बोलियाँ इसके अन्तर्गत हैं। जयपुर, अजमेर किशनगढ़, तथा इसके आस-पास के छोटे-छोटे राज्य इसके क्षेत्र हैं। इसमें भी साहित्य-रचना नहीं के बराबर है। इसमें लोकसाहित्य है।

१५. **दक्षिणी राजस्थानी**—इसमें मालवी, राँगड़ी, सोंधवाड़ी तथा निमाड़ी आदि बोलियाँ हैं। इंदौर के आसपास इसका क्षेत्र है। इसमें साहित्य नहीं है पर लोकसाहित्य है।

ङ. पहाड़ी

१६. **पूर्वी पहाड़ी**—यह नेपाल की बोली है। इसके अन्य नाम गुरखाली, गोरखी, नेपाली, परबतिया तथा खसकुरा हैं। काठमांडू की घाटी में इसका परिनिष्ठित रूप बोला जाता है। इसमें प्राचीन साहित्य नहीं है पर आधुनिक साहित्य कुछ लिखा गया है। यह नागरी अक्षरों में लिखी जाती है। इस पर मैथिली, राजस्थानी तथा एकाक्षर परिवार की नेवारी भाषा का कुछ-कुछ प्रभाव पड़ा है।

१७. **पश्चिमी पहाड़ी**—इसके अंतर्गत बहुत सी पहाड़ी बोलियाँ हैं जिनकी संख्या तीस से ऊपर है। इनमें प्रधान जौनसारी, चंबाली तथा क्योंथली आदि हैं। उत्तर प्रदेश के जौनसार से लेकर पंजाब में सिरमौर राज्य, शिमला की पहाड़ी मंडी, कुड़, चंबा तथा काश्मीर के भदरवार तक इसका क्षेत्र है। चंबाली (जो चंबा की बोली है) को छोड़ कर शेष भाषाएँ टाकरी लिपि में लिखी जाती हैं। इनमें केवल लोकसाहित्य है।

१८. **मध्यवर्ती पहाड़ी**—कुमायूँ और गढ़वाल इसका क्षेत्र है। इसकी मुख्य बोलियाँ कुमायूँनी और गढ़वाली हैं। लोकसाहित्य के अतिरिक्त नवीन लिखित साहित्य भी इसमें है।

८

हिन्दी भाषा का शब्द-समूह

किसी भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्दों के समूह को उस भाषा का 'शब्द-समूह' (Vocabulary) कहते हैं। शब्द-समूह के संबंध में अध्ययन करने के पूर्व एक बात स्पष्ट समझ लेनी चाहिए कि किसी भी भाषा का 'शब्द-समूह' स्थिर या निश्चित नहीं रहता। समय की गति के साथ सर्वदा ही उसमें कुछ नए शब्द आते रहते हैं और पुराने शब्द भूलते रहते हैं। उदाहरण के लिए हिंदी भाषा को लें। रीतिकालीन साहित्य में प्रयुक्त जाने कितने ही शब्द आज हिंदी में प्रचलित नहीं है, इस प्रकार वे हमारे शब्द-समूह से निकल गए हैं और दूसरी ओर नई सभ्यता के प्रकाश में विभिन्न यंत्रों और अन्य चीज़ों से संबंधित जाने कितने शब्दों का हमारे शब्द-समूह में प्रवेश हो गया है। कहने का आशय यह है कि आज के शब्द-समूह से एक वर्ष बाद का शब्द समूह भिन्न होगा तथा एक वर्ष पूर्व का शब्द-समूह भिन्न रहा होगा।

किसी भाषा के शब्द-समूह का अध्ययन प्रायः इस दृष्टि से किया जाता है कि उसमें कितना अंश अपने देश और अपनी भाषा का है और कितना विदेशी। इस प्रकार के अध्ययन से संस्कृति में मिले विभिन्न तत्वों पर भी प्रकाश पड़ता है। कुछ लोग किसी भाषा के विशुद्ध होने की भी बात सोचते हैं। ऐसे कुछ लोगों का यह भी विचार होता है कि अपनी

भाषा से विदेशी शब्दों को यथासाध्य दूर रखना चाहिए। पर तथ्य यह है कि संसार की कोई भी भाषा इस दृष्टि से शुद्ध नहीं कही जा सकती। नाना कारणों से एक देश के व्यक्तियों को दूसरे देश के व्यक्तियों के संपर्क में आना पड़ता है। इस प्रकार के संपर्क में अपनी आवश्यकतानुसार अनेकानेक चीज़ें या ज्ञान आदि एक दूसरे से लेते हैं। प्राचीन काल में यूनान अरब तथा चीन आदि के लोगों ने भारत के संपर्क से बहुत कुछ लिया और सीखा और दूसरी ओर भारत ने उन लोगों से भी बहुत कुछ लिया। इस लेन-देन में शब्दों की भी लेन-देन हुई। ये लेन-देन के शब्द एक स्थान से चल कर दूसरे देश में इतने घुलमिल जाते हैं कि वहाँ के लोगों का उनके बिना काम ही नहीं चल सकता। अंग्रेजी से हिंदी में आए कापी, पेंसिल, निब आदि अनेकानेक शब्द इसी प्रकार के हैं। यही दशा संसार की प्रायः सभी भाषाओं और बोलियों की है।

यहाँ हमें हिन्दी भाषा के शब्द-समूह पर विचार करना है। शब्द-समूह में देशी और विदेशी तत्वों की दृष्टि से पहले दो भेद किया जा सकता है—

क. भारतीय शब्द

ख. अभारतीय या विदेशी शब्द

आगे इसके अनेकानेक भेद किये जा सकते हैं जिन्हें स्पष्टता के लिए संक्षेप में इस प्रकार दिखाया जा सकता है—

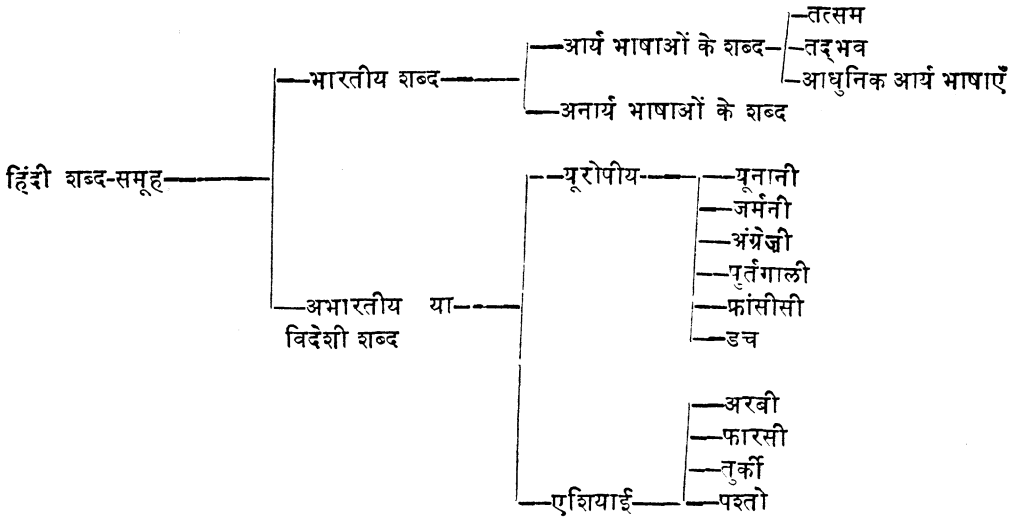

अब इन पर हम लोग अलग-अलग विचार करेंगे।

क. भारतीय शब्द

तत्सम—हिंदी के संदर्भ में 'तत्सम' शब्द संस्कृत के विशुद्ध शब्दों को कहते हैं। भारत की सभी आर्य भाषाएँ संस्कृत से निकली हैं अतः सभी में संस्कृत भाषा के शुद्ध शब्द अर्थात् तत्सम शब्द पर्याप्त संख्या में पाये जाते हैं। हिंदी, गुजराती मराठी आदि की अपेक्षा बंगला में तत्सम शब्दों की संख्या अधिक है। हिंदी के आदि, भक्ति तथा रीतिकालीन साहित्य को देखने से पता चलता है कि आज की अपेक्षा उस समय की हिंदी में तत्सम शब्दों की संख्या कम थी। आधुनिक हिंदी में आर्य समाज तथा इसी प्रकार के अन्य सांस्कृतिक कारणों से तथा संस्कृत साहित्य की ओर प्रधान रूप से ध्यान होने से संस्कृत शब्दों की संख्या बहुत बढ़ गई है। ऐसे शुद्ध संस्कृत या तत्सम शब्द हिंदी में बहुत कम हैं जो संस्कृत से सीधे पाली, प्राकृत, अपभ्रंश में होते आए हैं और अभी तक जिनका रूप विकृत नहीं हुआ है। श्री भोलानाथ तिवारी ने नागरी प्रचारणी सभा काशी से प्रकाशित हिंदी शब्द सागर को आधार मानकर गणना की थी जिसके आँकड़े उन्होंने कुछ दिन पूर्व साप्ताहिक भारत में प्रकाशित किये थे। उनकी गणना के अनुसार आज की हिंदी में तत्सम शब्दों की संख्या लगभग ३७,००० है।

तत्सम शब्दों के भेद किए जा सकते हैं। एक तो शुद्ध तत्सम जिनके विषय में ऊपर कहा जा चुका है। कृष्ण, गृह, पाद, द्वार तथा आकाश आदि उदाहरण के लिए देखे जा सकते हैं। ये शुद्ध तत्सम शब्द हैं। दूसरे शब्द अर्धतत्सम कहे जाते हैं। 'अर्धतत्सम' उन शब्दों को कहते हैं जो संस्कृत शब्दों से आधुनिक काल में बिगड़ कर बने हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार कृष्ण से आधुनिक काल में बिगड़ा रूप 'कान्हा' अर्धतत्सम है। यह आधुनिक काल में 'कृष्ण' से बिगड़ कर बना है।

तद्भव—तद्भव उन शब्दों को कहते हैं जो संस्कृत शब्दों से उत्पन्न हैं। बहुत पहले संस्कृत देश की भाषा थी। उस समय संस्कृत

के ही शब्द चारों ओर प्रचलित थे। वे शब्द उस समय से आज तक प्रयुक्त होते चले आ रहे हैं या यों कहिए कि संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश की सीढ़ियों को पार करते वे आज तक प्रचलित हैं। प्रचलन के इस वृहद्काल में उनका रूप बिगड़ कर दूसरा से दूसरा हो गया है। संस्कृत शब्दों से बिगड़ कर बने ये शब्द ही 'तद्भव' कहे जाते हैं। कुछ उदाहरण हैं :—

तत्सम	तद्भव
चैत्र	चैत
वृश्चिक	बिच्छू
वृद्ध	बूढ़ा
शृंग	सींग
जामातृ	जमाई
गोधूम	गेहूँ
कर्कट	केंकड़ा
शिंबा	सेम
मृत्तिका	मिट्टी
चंद्र	चाँद
कंटक	काँटा
कैवर्त	केवट
चित्रक	चीता

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी 'तद्भव' शब्द मिलते हैं जिनके संस्कृत रूप का आज हमें पता नहीं है। 'तुम्हारा', 'हमारा' आदि कई शब्द इसी श्रेणी के हैं। बहुत से शब्द ऐसे भी मिलते हैं जिनके बीच के प्राकृत तथा अपभ्रंश आदि रूप भी उपलब्ध हैं। कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे—

संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश	हिन्दी
मया	मई	मइं	मैं

त्वया	तूअं	तुहं	तू
यस्य	जिस्स	...	जिस
एवं	एव्वं	...	अब
पाद	पाऊ	...	पाव
अशीति	असीइ	असिइ	अस्सी

उपर्युक्त हिंदी शब्द तद्भव है। हिंदी साहित्य के आदि, भक्ति तथा रीतिकाल के साहित्य के शब्द-समूह को यदि देखा जाय तो उसमें संभवतः ७५ प्रतिशत शब्द तद्भव मिलेंगे। पर दूसरी ओर आधुनिक साहित्य में तद्भव शब्दों की संख्या बहुत कम हो गई है। उन शब्दों को गँवारू या लोकसाहित्य का शब्द समझ कर लोग उनके स्थान पर शुद्ध संस्कृत शब्दों की ओर अधिक झुके हैं। पर, यथार्थतः यह लक्षण शुभ नहीं कहा जा सकता। सच पूछिए तो यह वही दशा है जैसे एक लड़का दसवीं कक्षा में उत्तीर्ण होकर पुनः पहली कक्षा से शुरू करे। 'आश्चर्य' शब्द हम संस्कृत भाषा के प्रचार के समय बोलते थे। धीरे-धीरे बोल कर उसे हमने कोमल करके कई हजार वर्षों में 'अचरज' बनाया, अब फिर उसे छोड़ कर पुराने शब्द 'आश्चर्य' को ग्रहण करना ठीक ऊपर के उदाहरण के समान है। यथार्थतः हिंदी के अपने शब्द ये तद्भव ही हैं। प्रसन्नता है कि इधर प्रगतिशील साहित्यिक लोक-प्रचलित इन शब्दों को अधिक प्रश्रय दे रहे हैं और अब दक्षिण के स्थान पर 'दखिन' तथा 'पक्ष' के स्थान पर 'पाँख' आदि के प्रयोग साहित्य में होने लगे हैं।

आधुनिक आर्यभाषाओं के शब्द—हिंदी राष्ट्रभाषा तो अभी कुछ वर्ष पूर्व घोषित हुई है पर यथार्थतः राष्ट्रभाषा का कार्य यह बहुत दिन पूर्व से करती आ रही है। बहुत दिनों से अंतर्प्रान्तीय लोग जब एक दूसरे से मिलते

---

[1]इस दृष्टि से डा० सुनीतिकुमार चटर्जी लिखित 'ऋतंभरा' के कुछ लेख पढ़ने लायक हैं।

रहे हैं तो टूटी-फूटी हिंदी से काम चलाते रहे हैं।[1] इसका फल यह हुआ है कि हिंदी के बहुत से शब्द भारत की अन्य भाषाओं में जा पहुँचे हैं और उनके शब्द-समूह के अंग हो गए हैं। पर दूसरी ओर हिंदी भाषी को उनकी अपनी भाषा के माध्यम के कारण अन्य भाषाओं के शब्दों को कम बोलना पड़ा। अतः आधुनिक आर्यभाषाओं के अधिक शब्द हिंदी में नहीं आ सके हैं। पर कुछ उदाहरण मिल जाते हैं। छायावादी कवियों, प्रधानतः निराला तथा सुमित्रानन्दन पंत ने बँगला भाषा से बहुत से शब्द लिए हैं। यथार्थतः ये शब्द प्रायः संस्कृत के हैं। अतः निश्चित रूप से उन्हें अलग कर सकना सम्भव नहीं। महावीर प्रसाद द्विवेदी के समय में मराठी से भी हिंदी में कुछ शब्द आए। कुछ लोगों के अनुसार 'स्वप्निल' तथा 'ऊर्मिल' आदि शब्द बँगला से हिन्दी में आए हैं। 'उपन्यास' तो निश्चित रूप से बँगला शब्द है।

भारतीय अनार्य भाषाओं के शब्द—आर्यों के आने के पूर्व भारत में अनार्य लोग थे। नवीन खोजों के आधार पर यह सिद्ध हुआ है कि आर्यों के पूर्व यहाँ कई जातियाँ आ चुकी थीं।[1] उनमें कुछ लोग तो आए और चले गए पर शेष यहीं बस रहे। बाद में जब आर्य आए तो उन पुरानी जाति की संस्कृतियों से आर्य-संस्कृति का सम्मिलन हुआ। इस सम्मिलन में धर्म तथा भाषा आदि अनेक क्षेत्रों में आर्यों ने अनार्यों से बहुत कुछ ग्रहण किया। इस सम्मिलन का प्रभाव संस्कृत भाषा पर भी पड़ा और आज संस्कृत के प्राप्त शब्द-समूह में ऐसे शब्द भी हैं जिन्हें साधारणतः लोग संस्कृत समझते हैं पर यथार्थतः वे संस्कृत न होकर अनार्य शब्द हैं। इनके बहुत से शब्द हिंदी में भी आ गए हैं। डा० चटर्जी के अनुसार हिंदी का 'पिल्ला' (कुत्ते का बच्चा) शब्द तामिल से आया है। तामिल में 'पिल्ले' का अर्थ पुत्र या बच्चा होता है। कोड़ी (२०) शब्द कोल भाषाओं का है। के० अमृत के

---

[1] नेहरू अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ३१२-६

अनुसार हिंदी का 'झगड़ा' शब्द कनाड़ी शब्द 'जग्गल' से आया है। इसी प्रकार 'आटा' शब्द का भी विद्वानों ने तेलगू 'अट्टु' से संबद्ध होने का अनुमान लगाया है। कुछ लोगों के अनुसार हिन्दी के मूर्द्धन्यध्वनियों वाले ऐसे शब्दों में जिनका संस्कृत शब्दों से संबंध नहीं है ऐसे शब्द काफी खोजे जा सकते हैं, जिनका आगमन अनार्य भाषाओं से हुआ है। यहाँ और अधिक उदाहरण न लेकर यही कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में अभी अध्ययन की आवश्यकता है। उसके बाद ही निश्चय के साथ कुछ कहा जा सकता है।[1]

ख. अभारतीय या विदेशी शब्द

i यूरोपीय शब्द

यूनानी—भारतीय बहुत पहले यूनानियों के संपर्क में आए थे। सिकंदर-आगमन के बाद भारत और यूनान ने विभिन्न क्षेत्रों में एक दूसरे से बहुत कुछ ग्रहण किया। उस सांस्कृतिक संपर्क में निश्चय ही भारत के बहुत से शब्द यूनानी भाषा में गए होंगे और दूसरी ओर यूनान के बहुत से शब्द भारतीय भाषाओं में आए होंगे। उनमें बहुत से शब्द आज हिंदी में भी प्रचलित हैं। इस दृष्टि से बहुत अध्ययन अभी तक नहीं हुआ है। विद्वानों का विचार है कि 'दाम' (मूल्य) तथा 'होड़ा' (ज्योतिष का शब्द) कम से कम ये दो शब्द अवश्य ही यूनानी हैं। इसी प्रकार उस युग में हिब्रू भाषियों से भी भारतीयों का संपर्क हुआ था। श्री भोलानाथ तिवारी ने सम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित एक अपने लेख में दिखाया भी है कि हिब्रू बाइबिल में संस्कृत के ११ शब्द हैं। ऐसी दशा में यह भी असंभव नहीं है कि उस समय कुछ हिब्रू शब्द भी संस्कृत में आए हों और उनमें कुछ संस्कृत से हिंदी में भी आए हों। दुःख है कि इस क्षेत्र में अध्ययन नहीं हुआ है। अतः निश्चय के साथ सोदाहरण कुछ नहीं कहा जा सकता।

---

[1] इस सम्बन्ध में शिवशेखर मिश्र लिखित 'भारतीय संस्कृति में आर्येतरांश' पुस्तक पठनीय है।

जर्मन—जर्मनी के लोगों से भारत का कभी बहुत प्रत्यक्ष संपर्क नहीं रहा पर अँग्रेज़ी के माध्यम से कुछ जर्मन शब्द भी हिंदी में आ गए हैं। उदाहरण के लिए 'नात्ज़ी' तथा 'किंटरगार्टेन' लिए जा सकते हैं।

अँग्रेज़ी—अँग्रेज़ों से भारत का काफी दिनों तक अत्यन्त निकट का संपर्क रहा है, इसके अतिरिक्त अँग्रेज़ी आज विश्व की एक प्रकार से व्यापार-भाषा है। अतः इसके बहुत से शब्द हिन्दी में आ गये है। अँग्रेज़ी के बहुत से शब्द तो हिंदी की ग्रामीण बोलियों में भी प्रवेश कर गए हैं और इस प्रकार वे हिंदी के अपने हो गए हैं। उन्हें निकाल कर हम अपना काम नहीं चला सकते। हिंदी में प्रचलित अँग्रेज़ी शब्दों की संख्या श्री भोलानाथ तिवारी के अनुसार लगभग १७०० है। यहाँ प्रसंगतः एक और बात का उल्लेख किया जा सकता है। अँग्रेज़ी भाषा भी हिंदी से प्रभावित है और अँग्रेज़ी में गए हिंदी शब्दों की संख्या २३०० के लगभग है।[1]

यहाँ हिंदी में प्रयुक्त १७०० शब्दों की सूची तो नहीं दी जा सकती पर बानगी के लिए कुछ उदाहरण अवश्य लिए जा सकते हैं।

अंग्रेज़ी शब्द हिन्दी में मशीनों और उनके पुरजों के नाम, शासन संबंधी शब्दावली, शिक्षा, कालगणना, दवा तथा व्यापार विषयक नामों आदि के रूप में आए हैं। यहाँ इन शीर्षकों के अनुसार इन्हें देखा जा सकता है।

मशीन तथा उनके पुरजों के नाम—साइकिल, मोटर, हैंडिल, पायडिल, रीम, ब्रेक, ट्यूब, टायर, पंप, इंजन, रेल, बस, लारी, ट्रक, कार, इंजीनियर, वाच, रिस्टवाच, रेडियो, ग्रामोफोन, मशीन, रायफल, रिवाल्वर तथा स्क्रू आदि।

शासन सम्बन्धी शब्दावली—आफिसर, इंसपेक्टर, इनकमटैक्स

---

[1]शब्दों का जीवन, पृष्ठ ५४

आफिसर, कलक्टर, कमिश्नर, कान्सटिबुल, जेलर, मजिस्ट्रेट, जज, गवर्नर, वाइसराय, मिनिस्टर, सेक्रेटरी, प्रेसिडेंट, एसेंबुली तथा कौसिल आदि।

शिक्षा—स्कूल, कॉलेज, यूनिवर्सिटी, रिसर्च, कापी, पेन, निब, पेंसिल, फाउंटेनपेन, स्केल, डिग्री, पेपर, थीसिस तथा मास्टर आदि।

काल गणना—मिनट, सेकंड, जनवरी, फरवरी, मार्च, अप्रैल, मई, जून, जुलाई, अगस्त, सितंबर, अक्तूबर, नवंबर तथा दिसंबर आदि।

दवा—अस्पताल, डाक्टर, कंपाउंडर, इनजेक्शन, आपरेशन, एक्सरे, टिंचर, नर्स, सर्जन तथा सिविल सर्जन आदि।

व्यापार—रेट, बिल्टी, रसीद, इनवायस, कैशमेमो, बिल, चैक, कमीशन, वी० पी०, पार्सल, रजिस्ट्री, बैंक तथा बंडल आदि।

मिश्रित—मनीबेग, बिल्डिंग, बिगुल, बाडी, निकर, नोट, डेयरी, केटली तथा फीस आदि।

पुर्तगाली—पुर्तगाली भारत में आए तो थे पर हिंदी-प्रदेश से उनका कभी प्रत्यक्ष संपर्क नहीं था, फिर भी हिंदी में पुर्तगाली शब्द काफी आ गए हैं। आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि पुर्तगाली शब्दों ने हिंदी में इतना घर कर लिया है कि सहसा सुनकर विश्वास नहीं होता कि वे पुर्तगाली हैं। संतरा, मिस्त्री, गमला तथा पीपा आदि शब्दों को प्रायः लोग हिंदी शब्द समझते हैं पर यथार्थतः ये पुर्तगाली हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने अपने हिंदी भाषा के इतिहास में पुर्तगाली शब्दों की सूची में ५० शब्द दिए हैं। भोलानाथ तिवारी ने हिंदी में ८० पुर्तगाली शब्दों के होने का अनुमान लगाया है। यहाँ उदाहरण के लिए पुर्तगाली शब्दों की एक छोटी-सी सूची दी जा रही है—

कमीज़, कप्तान, नीलाम, तौलिया, चाबी, गोदाम, गोभी, गिर्जा, बाल्टी, अनन्नास, सागू, लबादा, संतरा, यीशू, बटाम, अचार, आलपीन, बोतल, इस्पात, आया, फ्रांसीसी, पीपा, पादरी, पाउ (पाव रोटी—एक प्रकार की रोटी) मिस्त्री, गारद तथा काजू आदि।

फ्रांसीसी--फ्रांसीसी शब्द हिंदी में १० से कम हैं, जिनमें प्रधान कारतूस, कूपन तथा अँग्रेज़ आदि हैं।

डच--डच शब्द केवल दो--बम (गाड़ी के दो डंडे) तथा तुरुप (ताश का) हैं।

यूरोप के अन्य देशों--जैसे स्पेन, इटली तथा रूस आदि--के भी शब्द संभवतः हिंदी में हों पर इस ओर अभी तक कार्य नहीं हुआ है। अतः कुछ नहीं कहा जा सकता।

ii एशिया के भारतेतर भाषाओं के शब्द

अरबी—अरबों से भारत का संबंध बहुत पुराना है। यही कारण है कि कुरान तथा प्राचीन अरबी साहित्य में भी भारतीय शब्द मिलते हैं। इसी प्रकार दूसरी ओर संस्कृ० में भी अरबी के शब्द ग्रहण किए गए हैं। पर यह तो प्राचीन संपर्क के आधार पर आदान-प्रदान था। भारत में मुसलमानी राज्य स्थापित होने के बाद फारसी भाषा का भारत में बहुत दिनों तक बोलबाला रहा और इस काल में भारत की सभी भाषाओं में फ़ारसी के माध्यम से काफी अरबी शब्द घुस आए। इनमें बहुत से अरबी शब्द तो भारतीय जीवन में पूर्णतया घुल-मिल गए हैं। श्री भोलानाथ तिवारी की गणना के अनुसार हिंदी में अरबी शब्दों की संख्या लगभग २४०० है। कलम, कानून, अबीर, शराब, किला, खतम, कुरसी, शर्बत, कुलाबा, शर्त तथा खज़ाना आदि कुछ शब्द उदाहरण के लिए देखे जा सकते हैं।

फ़ारसी--जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है फारसी भाषा का काफी दिन तक भारत में बोलबाला रहा है। यह हमारी कचहरियों की भाषा रही है। इसी कारण इसके शब्द साहित्यिक भाषा को कौन कहे ग्रामीण भाषा में भी घुस गए हैं। हिंदी में विदेशी भाषाओं में सबसे अधिक संख्या फारसी शब्दों की है। श्री भोलानाथ तिवारी की गणना के अनुसार यह संख्या

लगभग ३४०० है। उदाहरण के लिए तकिया, खुश, ख़र्च, खुशबू, अमीन, कुश्ती, कारीगर, शरम, मकान तथा मेज़ आदि लिए जा सकते हैं।

तुर्की—मुग़ल, गोर तथा गुलाम वंश जो भारत में राज्य कर चुके हैं, की भाषा तुर्की रही है, इसी कारण तुर्की शब्द भी हिंदी तथा भारत की अन्य भाषाओं में आ गए हैं पर आश्चर्य है कि इनकी संख्या बहुत कम है। इसका कारण यह है कि इनकी अपनी भाषा तुर्की तो थी पर फारसी को ही इन्होंने प्रश्रय दिया। इसी कारण फारसी का ही विशेष प्रभाव पड़ा। डा० धीरेन्द्र वर्मा के हिंदी भाषा के इतिहास में तुर्की शब्दों की सूची में ३० शब्द दिए गए हैं। श्री भोलानाथ तिवारी की गणना के अनुसार हिंदी में कुल लगभग ७० तुर्की शब्द हैं। उदाहरण के लिए लाश, कुर्क, उर्दू, कैंची, चिक, उजबक, चाकू, तमग़ा, तगाड़, बावर्ची, बीबी, बेगम, तोप, दारोगा, गलीचा तथा चकमक आदि शब्द देखे जा सकते हैं।

पश्तो—पश्तो शब्दों की संख्या बहुत कम है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार हिंदी में पठान और रोहिला (रोह—पहाड़) शब्द पश्तो के हैं।

इन सबके अतिरिक्त और भी बहुत-सी भाषाओं और देशों के शब्द हिन्दी में आज प्रचलित हैं। इस क्षेत्र में अभी खोज की आवश्यकता है। यहाँ बानगी के लिए तेलंग शब्द 'मर्तबान', लंका का शब्द 'बेरी-बरी', जापानी शब्द 'रिक्शा', आस्ट्रेलिया का 'कंगारू' तथा चीनी 'चाय' आदि लिए जा सकते हैं।

९

नागरी लिपि

भाषा के जन्म के बहुत बाद लिपि का जन्म हुआ होगा। पुराने विचार के लोगों का कहना है कि लिपि को भगवान ने बनाया। विशेषतः भारतीय पंडितों के अनुसार भारत की पुरानी लिपि ब्राह्मी को जगत के स्रष्टा ब्रह्मा ने बनाया और इसी कारण उसका नाम ब्राह्मी पड़ा। पर यथार्थतः यह सब अंधविश्वास हैं। संसार के अनेकानेक अन्य ज्ञान-विज्ञान की भाँति लिपि भी मनुष्य की अपनी सूझ हैं। आरम्भ में मनुष्य स्मरणार्थ किसी चीज़ में गाँठ आदि देता था या किसी चीज़ आदि के बोध के लिए उसका रेखा चित्र खींच देता था या १ (−) २ (=) ३ (≡) आदि की गणना वह रेखाओं द्वारा करता था और धीरे-धीरे इसी प्रकार के चिन्हों से लिपि तथा अंकों का विकास हुआ। यहाँ हमें लिपि विशेषतः नागरीलिपि पर विचार करना है।

भारत में लेखन की प्राचीनता

यों भारतीय लेखन के इतिहास पर विचार करते समय पश्चिमी विद्वानों ने प्रायः यह कहा है कि भारत में लिखने का प्रचार बहुत पुराना नहीं है। वह बहुत बाद में विदेशियों के प्रभाव से हुआ है। पर, यह मत पर्याप्त पुराना हो गया है और अब इसके विरुद्ध बहुत सी सामग्री उपलब्ध हो गई है।

भारत के प्राचीनकालीन अभिलेख यों अशोककालीन मिले हैं। अतः

इसी आधार पर कुछ लोगों का विचार था कि इसके बहुत पूर्व भारतीय लेखन का इतिहास नहीं जा सकता। पर अब जब हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में भी अभिलेख-खंड प्राप्त हो गए हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त भारतीय तथा बाह्य साहित्य में भी ऐसी बातें पर्याप्त संख्या में मिलती हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत में लिखने का प्रचार प्राचीनकाल से है। जैनसूत्रों के अनुसार भारत में ब्राह्मी, खरोष्ठी तथा यवनानी आदि १८ लिपियाँ थीं। ललितविस्तर के अनुसार यहाँ ६४ लिपियाँ थीं, जिनमें आज हम केवल ब्राह्मी और खरोष्ठी को पहचान सके हैं। पाणिनि के अष्टाध्यायी में 'लिपि' या 'लिबि' शब्द मिलता है। कुछ लोगों के अनुसार वैदिक युग में भी लोग लिखने से परिचित थे। उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित ध्वनियों के आधार पर वैदिक संहिताओं का सस्वर पाठ बिना लिपि-ज्ञान के संभव नहीं। मेगस्थनीज़, कुर्टियस तथा सिकंदर के एक सेनानी के लेखों से भी इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि उनके आने तक लेखन-कला काफी उन्नतावस्था में थी। महावग्ग के अनुसार ५वीं सदी ई० पूर्व तक यहाँ न केवल लिखने का प्रचार था अपितु लिखना सिखाने के लिए स्कूल भी थे।

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि लिखने की परंपरा यहाँ इतनी पुरानी है तो उसके अवशेष क्यों नहीं मिलते। इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है प्राचीन लेख जो भोजपत्र तथा तालपत्र आदि पर थे यहाँ की विशिष्ट जलवायु के कारण सड़-गल गए।[1]

सिंधुघाटी की लिपि

भारत की प्राचीनतम प्राप्त लिपि सिंधुघाटी की लिपि है। यह लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है। अतः इसके संबंध में निश्चय के साथ

---

[1] इन बातों के विस्तार के लिए ओझा जी की 'भारतीय लिपि माला' तथा डॉ० राजबली पांडे की 'इंडियन पैलोग्राफी' पठनीय हैं।

कुछ नहीं कहा जा सकता। यों डॉ० हंटर ने इनका बड़े परिश्रम से अध्ययन किया है और कुछ ब्राह्मी अक्षरों सी उनकी समानता दिखलाने का भी प्रयास किया है। डॉ० राजबली पांडेय ने उनके कार्य को कुछ और आगे बढ़ाया है तथा कुछ अधिक अक्षरों को लेकर सिंधु घाटी की लिपि और ब्राह्मी लिपि में साम्य दिखलाया है। पर, इन बातों के बावजूद भी सर्व सम्मति से अभी तक लोग इस मत के नहीं हो सके हैं कि ब्राह्मी लिपि का संबंध सिंधु घाटी की लिपि से है।

भारत की प्राचीन लिपियाँ : खरोष्ठी तथा ब्राह्मी

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है प्राचीन भारतीय साहित्य में कई प्रकार की लिपियों के उल्लेख मिलते हैं। एक ओर जैन सूत्रों में १८ लिपियों के नाम हैं तो दूसरी और ललितविस्तर में ६४ लिपियों के। आज इन अनेकानेक लिपियों में केवल दो—खरोष्ठी तथा ब्राह्मी—के बारे में ही सामग्री उपलब्ध है। यहाँ संक्षेप में दोनों पर विचार किया जा रहा है।

खरोष्ठी

इस लिपि का प्रधान रूप से प्रचार पश्चिमोत्तरी प्रांतों में था। यह आधुनिक उर्दू लिपि की भाँति दाहिनी ओर से बाईं ओर को लिखी जाती थी। अशोक के शहबाजगढ़ी और मनसेहरा वाले लेख इसी लिपि में हैं।

खरोष्ठी नाम के संबंध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। एक मत के अनुसार किसी 'खरोष्ठ' नाम के आचार्य ने इस लिपि का आविष्कार किया, अतः इसका नाम 'खरोष्ठी' पड़ा। दूसरे मत से यह गदहे की खाल पर लिखी जाती थी। अतः इसका नाम 'खरपृष्ठी' था, 'खरोष्ठी' शब्द उसी का बिगड़ा रूप है। तीसरे मत के अनुसार इस लिपि का प्राचीन केन्द्र 'काशगर' था और काशगर का संस्कृत रूप 'खरोष्ट' हुआ, अतः उसी आधार पर लिपि

'खरोष्ठी' कहलाई। एक चौथा मत यह भी है कि यह लिपि मूलतः आर्मेइक है, अतः आर्मेइक शब्द 'खरोत्थ' के आधार पर इसका नाम खरोष्ठी पड़ा है। इन चारों में निश्चय के साथ किसी को ठीक नहीं कहा जा सकता।

कुछ भी हो इस संबंध में विद्वानों में मतभेद नहीं है कि खरोष्ठी मूलतः भारतीय लिपि नहीं है। फ़ारस के राजा डैरियस के राजत्वकाल में यह भारत आई और उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र में इसका प्रचार रहा। इसमें कुल २२ अक्षर थे। पहली ईसवी के आरंभ तक यह लिपि लुप्त हो गई थी।

ब्राह्मी

ब्राह्मी भारत की प्राचीन काल की प्रधान लिपि है। इस लिपि के प्राचीनतम लेख ५वीं सदी ई० के मिले हैं। भारत की वर्तमान प्रायः सभी लिपियाँ इसी से निकली हैं।

'ब्राह्मी' के संबंध में पहला प्रश्न इसके नाम के संबंध में उठता है। इस संबंध में श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने दो अनुमान लगाए हैं। (१) भारत में प्रायः अन्य धर्मप्रधान देशों की भाँति सभी अत्यन्त प्राचीन चीज़ों की उत्पत्ति ईश्वर या ब्रह्मा से मानी जाती रही है। यही बात इस लिपि के भी बारे में है। यह इतनी पुरानी है कि लोगों को इसके आविष्कर्ता आदि के बारे में कुछ ज्ञात नहीं है, अतः ब्रह्मा को इसका 'आविष्कर्ता' माना है और इसी आधार पर इसे ब्राह्मी कहा गया है।[1] (२) प्राचीन युग में पढ़ने-लिखने का विशेष रूप से ब्राह्मणों के समाज में प्रचार था, अतः ब्राह्मणों के आधार पर यह ब्राह्मी कहलाई। सत्य यह है कि ये दोनों ही अनुमान हैं और इस विषय में निश्चय के साथ प्रमाणों के आधार पर कुछ नहीं कहा जा सकता।

---

[1] फा-युअन-चुलिन नामक चीनी कोष के अनुसार 'ब्रह्मा' नाम के किसी आचार्य ने इसका आविष्कार किया था।

'ब्राह्मी' लिपि के संबंध में दूसरा प्रश्न इसके भारतीय या अभारतीय होने के संबंध में है। यह प्रश्न बड़ा विवादास्पद रहा है और लोगों ने तरह-तरह की अटकलें लगाई हैं। 'ब्राह्मी' के देशी या विदेशी होने के मतों को दो वर्गों में रक्खा जा सकता है—[१]

क. अभारतीय मानने वालों का मत

इस वर्ग में मोटे रूप से ५ मत हैं—

१. डीके के अनुसार ब्राह्मी की उत्पत्ति असीरिया के कीलाक्षरों से संबंधित किसी सामी लिपि से हुई है।

२. कुपेरी के अनुसार चीनी लिपि से इसकी उत्पत्ति हुई है।

३. डॉ० साहा इसे अरबी से संबद्ध मानते हैं।

४. सेनार्ट तथा विल्सन आदि इसे ग्रीक से संबद्ध मानते हैं। उनके अनुसार सिकंदर के आक्रमण के बाद ग्रीस से संपर्क स्थापित होने पर भारतीयों ने इसे ग्रीसवालों से सीखा।

५. बुहलर तथा वेबर आदि कुछ विद्वानों के अनुसार 'भारतीयों ने ९वीं सदी ई० पू० फोनीशियन व्यापारियों से १८ अक्षर, ८वीं सदी ई० पू० मेसोपटामियावालों से २ अक्षर और ६ठी सदी ई० पू० आर्मइक लोगों से २ अक्षर लेकर' इन बाइस अक्षरों एवं इनके आधार पर कुछ और अक्षर बनाकर ब्राह्मी लिपि बनाई।

ख. भारतीय मानने वालों का मत

इस वर्ग के समर्थक कोलब्रुक, कनिंघम, जायसवाल तथा ओझाजी आदि हैं। इन लोगों के अनुसार ब्राह्मी भारत की लिपि है। इसका भारत में ही जन्म तथा विकास आदि हुआ है।

अभारतीय मानने वालों में बुहलर का मत प्रामाणिक माना जाता रहा

---

[१] भोलानाथ तिवारी : भाषाविज्ञान, पृ० २८४–८६.

ह पर ओझा जी ने अपनी 'प्राचीन लिपि माला' में इनके मत का पुष्ट प्रमाणों के आधार पर खंडन किया है। आजकल भारतीय तथा कुछ बाहरी विद्वान भी ब्राह्मी को भारत की ही लिपि मानते हैं यद्यपि इस विषय में पुष्ट प्रमाणों का प्राचुर्य नहीं है।

ब्राह्मी के संबंध में निश्चय के साथ केवल इतना ही कहा जा सकता है कि ई० पू० ५०० से लगभग ३५० ई० तक इसका प्रचार भारत में रहा। इस समय तक यह पूरे भारत में फैल गई, अतः स्वभावतः धीरे-धीरे इसके दो रूप हो गये जिन्हें सुविधा के लिए उत्तरी रूप और दक्षिणी रूप कहा जा सकता है। ब्राह्मी के दक्षिणी रूप का प्रचार दक्षिण भारत में था। आज की तेलगू, कन्नड़, मलयालम, तुलू, कलिंग तथा तमिल लिपियाँ उसी से विकसित हुई हैं।

ब्राह्मी के उत्तरी रूप का प्रचार उत्तरी भारत में था। गुप्तवंशीय राजाओं (चौथी तथा पाँचवीं सदी) के अभिलेख इसी में मिले हैं। इसी कारण उनके नाम पर उस काल की ब्राह्मी को आज के विद्वान 'गुप्त लिपि' कहने लगे हैं। लिखने की यह शैली उस काल में पूरे उत्तर भारत में प्रचलित थी।

पाँचवीं सदी तक गुप्तलिपि रही। उसके बाद छठी सदी से ९वीं सदी तक उत्तर भारत में ब्राह्मी का जो रूप प्रचलित रहा उसे 'कुटिल लिपि' कहा जाता है। इसके लिए 'कुटिलाक्षर' नाम आधुनिक विद्वानों द्वारा नहीं दिया गया है। यह प्रयोग प्राचीन है। इस लिपि की आकृति टेढ़ी या कुटिल थी, इसीलिए इसका यह नाम पड़ा। कुटिल लिपि से ही आगे विकसित होकर उत्तर भारत की लिपियाँ निकलीं।

नागरी लिपि

९वीं सदी के बाद ब्राह्मी का जो स्वरूप प्रयोग में आया उसे नागरी

लिपि कहते हैं। इस लिपि का नाम नागरी क्यों पड़ा इस संबंध में विद्वानों में मतभेद है। आर० शास्त्री के अनुसार इसका नाम देवनागरी है और इसका कारण यह है कि प्राचीन काल में जब मूर्तियों का आरंभ नहीं हुआ था पूजा के लिए सांकेतिक चिन्ह लिखे जाते थे, जिन्हें 'देवनागर' कहते थे। कालांतर ये ही चिन्ह ध्वनिसूचक लिपिचिन्ह बन गये, अतः इस लिपि का नाम देवनागरी पड़ा। एक अन्य मत के अनुसार 'नागर' ब्राह्मणों में प्रचलित होने के कारण यह नागरी लिपि कहलाई। एक तीसरे मत से नागरी लिपि के चिन्ह और 'देवनागर' कहलाने वाले तांत्रिक चिन्हों में सादृश था। अतः लोग प्रमादवश इसे देवनागरी कहने लगे और उसी का प्रचार हो गया। एक मत यह भी है कि नगर में प्रचलित होने से यह लिपि नागरी कहलाई। पर ये चारों मत अनुमान ही हैं। वास्तव में जैसा कि डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने कहा है नागरी नाम पड़ने का कारण अनिश्चित है।

दक्षिण भारत में नागरी का प्रचार उत्तर भारत की अपेक्षा पहले हुआ। उधर इसके कुछ लेख ८वीं सदी तक के मिले हैं। दक्षिण में इसका नाम न तो 'नागरी' था और न 'देवनागरी'। यह 'नंदि नागरी' नाम से प्रसिद्ध थी। संस्कृत पुस्तकों के लेखन में अब भी इस लिपि का उधर प्रयोग किया जाता है। यों संस्कृत तथा पालि, प्राकृत आदि के लिए सारे संसार में आज नागरी लिपि का ही प्रयोग होता है। नागरी के इस व्यापक प्रचार का श्रेय मैक्समूलर को है।

१०वीं सदी के आसपास की नागरी पूर्णतः आज की नागरी नहीं थी। उस समय अ, आ, घ, प, म, य, ष, तथा स के सिर दो भागों में विभक्त थे। पर, कुछ ही दिनों बाद प्रायः ११वीं सदी में दो भाग मिलकर एक हो गए और शिरोरेखा दी जाने लगी। उसके बाद इ, ध, ए, ऐ, ओ तथा औ अक्षरों को छोड़ कर प्रायः शेष अक्षर अब तक उसी रूप में चले आ रहे हैं। इधर कुछ दशकों से नागरी लिपि में कुछ और भी परिवर्तन आ गए हैं:—

१. च्च क्क आदि संयुक्त वर्णों को छापे की सुविधा के लिए च्च क्क रूप में लिखा जाने लगा है।

ङ, ञ्, न् तथा म् आदि के स्थान में विन्दु का प्रयोग हो रहा है, जैसे गङ्गा के स्थान पर गंगा आदि ।

३. अ के स्थान पर अ, ण के स्थान पर ण तथा ल के स्थान पर ल का प्रचलन अधिक हो रहा है। यह मराठी प्रभाव है।

४. इधर कुछ दिनों से शिरोरेखा हटा कर भी लोग लिखने लगे हैं।

विशिष्ट ध्वनियों के लेखन, वैज्ञानिकता तथा टंकण एवं प्रेस की सुविधा के लिए नागरी लिपि में सुधार[1] का आंदोलन चल रहा है। कुछ स्थानों पर कुछ परिवर्तन हो भी गए हैं और प्रयोग में भी आ रहे हैं, पर अभी तक कोई सर्वमान्य परिवर्तन सामने नहीं आया है। यद्यपि वह दिन अब दूर नहीं है जब नागरी का सुधरा, अधिक वैज्ञानिक और उपयोगी रूप हमारे सामने आ जायगा ।

अंक

नागरी अक्षरों की भाँति नागरी अंकों की भी उत्पत्ति ब्राह्मी अंकों से हुई है, पर, इस संबंध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि पुराने अंकों और आजके अंकों में केवल रूप भेद ही नहीं है बल्कि उनके प्रयोग में भी भेद है, जिसे आगे हम लोग संक्षेप में देखेंगे। ब्राह्मी अक्षरों की भाँति ही ब्राह्मी अंकों की उत्पत्ति के संबंध में भी विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोगों के अनुसार भारतीयों ने अपने अंक विदेशों से लिए हैं। कुछ लोगों के अनुसार इन पर विदेशों का प्रभाव है और ओझा जी प्रभृति लोगों के मत में लिपि की भाँति ये भी पूर्णतः भारतीयों की अपनी चीज़ हैं।

पुराने ब्राह्मी अंकों और आज के नागरी अंकों के प्रयोग की मुख्य विशेषतायें ये हैं—

---

[1]दे० परिशिष्ट 'ख'

१. आजकल शून्य (०) का प्रयोग होता है पर प्राचीन काल में १ से अंक का आरंभ होता था।

२. आज प्रधान अंक १ से १० तक हैं, पर पहले प्रधान अंक १ से ९ तक ही थे।

३. आजकल १ से १० तक की संख्याओं के आधार पर सभी संख्याएँ लिखी जाती हैं, पर प्राचीनकाल में यह बात नहीं थी।

४. आज शून्य के आधार पर १, २, ३, ४, तथा ५ आदि से १०, २०, ३०, ४०, ५०, ६० तथा ७० आदि लिख लेते हैं पर प्राचीन काल में इन सब के अलग-अलग चिन्ह होते थे।

५. इसी प्रकार १० से २० के बीच की संख्या ११ तथा १३ आदि या २० से ३० के बीच की संख्याएँ २५ तथा २६ आदि या इसी प्रकार दस से कटने वाली संख्याओं के बीच में आने वाली अन्य संख्यायें आज की भाँति नहीं लिखी जाती थीं। इनके नियम भिन्न थे। उदाहरण के लिए '५२' लीजिए। आज तो '५' के आगे '२' रख कर इसे प्रकट करते हैं पर पहले ५० के चिन्ह के आगे २ रख कर इसे प्रकट करते थे।

७. सौ से ऊपर की संख्या लिखने के लिए प्राचीन काल में सौ की संख्या का चिन्ह लिख कर उसके बाद शेष संख्या का चिन्ह लिखते थे। २०० या ३०० आदि के लिए १०० के चिन्ह के ऊपर नीचे या दाएँ क्रम से एक और दो आड़ी रेखाएँ लगाई जाती थीं।

८. ४०० या इससे ऊपर के लिए नियम और भिन्न था।

ये कुछ थोड़ी सी बातें हैं। इनके आधार पर कहा जा सकता है कि उस समय आज की अपेक्षा अधिक चिन्हों तथा नियमों को याद रखने की आवश्यकता थी, अतः वह प्रणाली आज की तुलना में कठिन थी।

प्राचीन शैली का प्रयोग ४थी सदी तक मिलता है। उसके बाद ५वीं

सदी से आज की प्रचलित नवीन शैली मिलती हैं, जिसमें शून्य का प्रयोग आदि ऊपर समझाई गई विशेषताएँ मिलती हैं। शून्य का प्रचार तथा उस आधार पर प्रचलित नवीन शैली भारत की अपनी चीज़ हैं। यहाँ से यह शैली अरब पहुँची जहाँ से इसका यूरोपीय देशों में प्रचार हुआ।

आगे अक्षर और अंकों के विकास का चित्र दिया जा रहा है। यह ओझा जी और डॉ० पांडेय की पुस्तकों के आधार पर है।

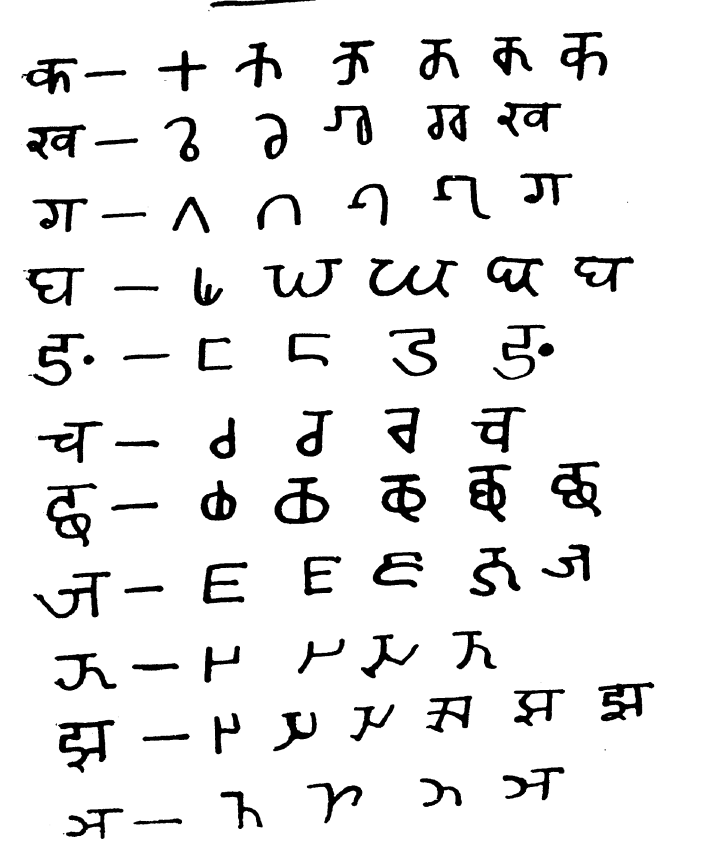

व्यंजन

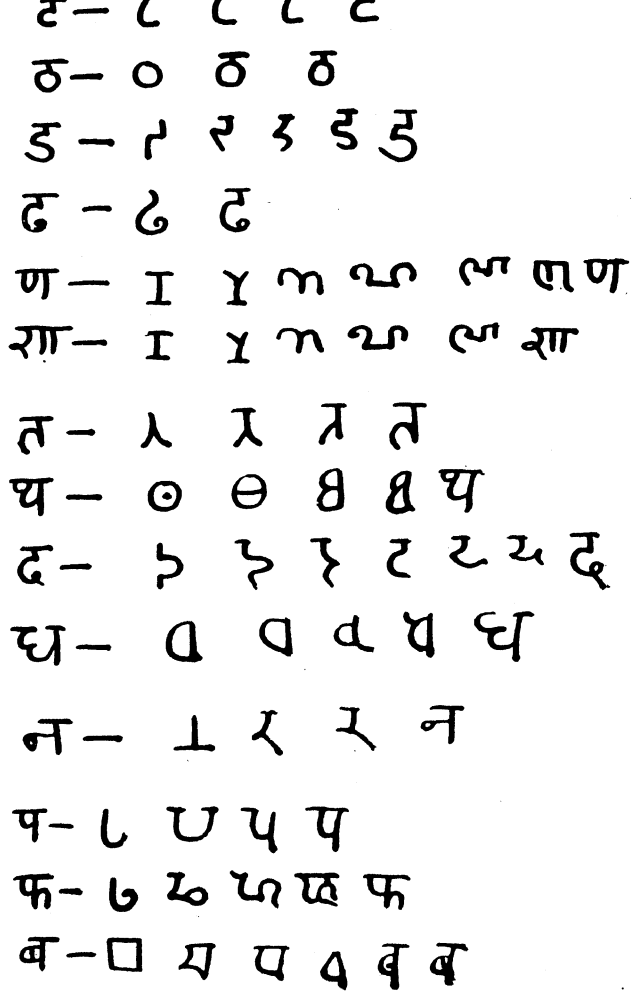

ट—
ठ—
ड—
ढ—
ण—
ण—
त—
थ—
द—
ध—
न—
प—
फ—
ब—

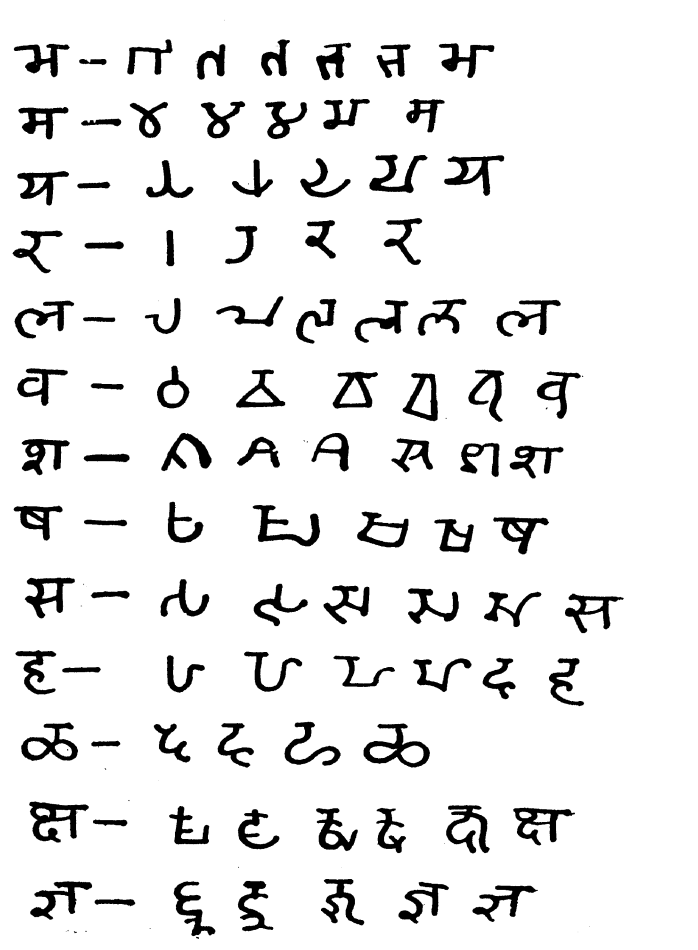

भ —
म —
य —
र —
ल —
व —
श —
ष —
स —
ह —
ळ —
क्ष —
ज्ञ —

स्वर

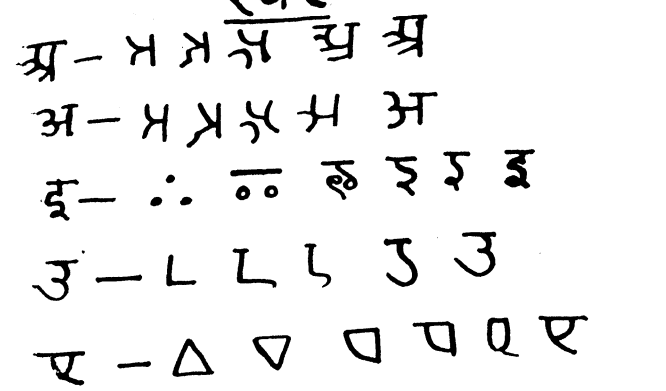

अंक

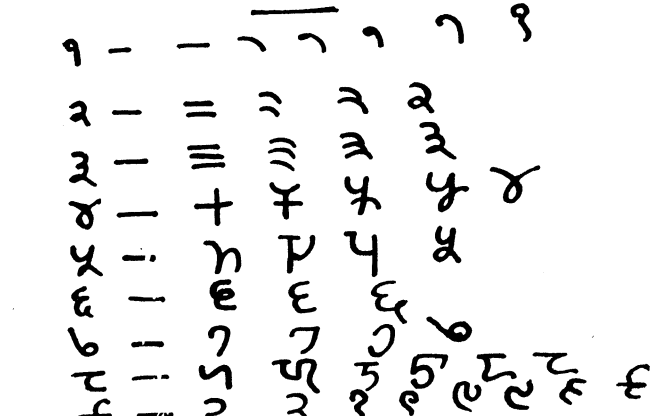

परिशिष्ट क

आर्यों का मूल स्थान और उनका भारत में आगमन

आर्यों के मूल स्थान के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद हैं। यूरोप और एशिया के बहुत से विद्वानों ने इस क्षेत्र में कार्य किया है और विभिन्न स्थानों पर आर्यों के मूल स्थान होने का अनुमान लगाया है। कुछ अनुमानों का आधार यदि भाषा-विज्ञान है तो कुछ का ज्योतिष या नृविज्ञान और कुछ का प्राचीन साहित्य तो कुछ का पुरातत्व आदि। यहाँ उस पूरे वाद-विवाद पर प्रकाश डालना संभव नहीं है। संक्षेप में कुछ प्रधान विद्वानों का निष्कर्ष देखा जा सकता है।

१. डा० गाइल्स——कारपेथियन पर्वत, बाल्कन, आस्ट्रियन आल्प्स तथा एरजबर्ग के बीच का क्षेत्र।

२. पेनक——जर्मनी

३. नेहरिंग तथा पोकोर्नी——दक्षिणी रूस

४. मैक्समूलर——मध्य एशिया

५. मेयर——पामीर

६. ब्रान्देन्स्ताइन——यूराल के दक्षिण एवं पूर्व किरगीज़ का मैदान

७. बाल गंगाधर तिलक——आर्कटिक प्रदेश

८. अविनाश चन्द्र दास——सरस्वती नदी के किनारे सप्तसिंधव

९. गंगानाथ झा——ब्रह्मर्षि देश

१०. डी० एस० त्रिवेदी——मुल्तान के पास देविका नन्द

११. एल०डी० कल्ला——काश्मीर

अब भी आर्यों के मूल स्थान की समस्या सुलझ नहीं पाई है। यों अब तक के प्राप्त आधारों पर आर्यों के मूल देश वोल्गा नदी के पास दक्षिण पूर्व यूरोप में कहीं होने की संभावना अधिक है। डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी ब्रान्देन्स्ताइन के किरगिज़ के मैदान वाले मत को ही ठीक मानते हैं।[1]

मूल स्थान से कुछ आर्य यूरोपीय देशों में गए तथा कुछ लोग ईरान में जाकर बसे। वहाँ से पुनः कुछ लोग भारत में आए। भाषा के अध्ययन के आधार पर ग्रियर्सन ने यह अनुमान लगाया है कि भारत में आर्य केवल एक ही बार न आकर कदाचित दो बार आए। संभवतः पहली बार काबुल की घाटी से होकर आए और दूसरी बार गिलगिट और चित्राल की ओर से।

जो आर्य पहले आए थे उनके ठीक से बस जाने के बाद आर्यों की दूसरी मंडली आई। ये बाद में आने वाले आर्य संभवतः सरस्वती नदी के निकट बस गए। पुराने आर्य इनके चारों ओर बसे हुए थे। धीरे-धीरे दोनों आर्य फैले पर आरंभ में वे जिस प्रकार बसे थे वही रूप बाद में भी क़ायम रहा। इस आधार पर भाषाओं के संबंध में यह अनुमान लगता है कि कश्मीरी, पश्चिमी पंजाबी, सिंधी, महाराष्ट्री, उड़िया, बिहारी बंगाली तथा आसामी पुराने आर्यों की भाषाएँ हैं तथा हिंदी आदि शेष आधुनिक आर्य भाषाएँ नए आर्यों की।

हार्नली का भी कुछ इसी प्रकार का मत है। उसी के आधार पर ग्रियर्सन ने यह रूप दिया है। चंदा ने नृविज्ञान के आधार पर लगभग यही परिणाम निकाला है, पर, सुनीति कुमार चटर्जी इससे सहमत नहीं हैं। उन्हें यह अनुमान निराधार ज्ञात होता है।

---

[1] भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, पृ० १५

परिशिष्ट ख

नागरी लिपि में सुधार

संसार की कोई भी लिपि पूर्ण नहीं कही जा सकती। यों अन्य बहुत सी लिपियों की अपेक्षा रोमन लिपि बहुत सी बातों में अच्छी है और उसकी अच्छाई के कारण ही टर्की आदि बहुत से देशों ने अपनी लिपि का परित्याग कर उसे अपना लिया है, पर वह भी सभी दृष्टियों से पूर्ण नहीं है। उसकी अपूर्णता पर ही खीझकर जार्ज बार्नर्डशा ने कहा था कि अंग्रेज़ी भाषा में प्रयुक्त ४२ ध्वनियों के लिए जो व्यक्ति पूर्ण वर्णमाला तैयार कर दे उसे मैं अपनी सारी सम्पत्ति दे देने को तैयार हूँ। यों नागरी लिपि की तुलना में तो रोमन लिपि बहुत ही अच्छी है और इसी कारण डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी टर्की की भाँति ही अपनी नागरी लिपि को छोड़ कर भारत को भी रोमन लिपि अपना लेने की सलाह देते हैं।[1] नागरीलिपि कुछ दृष्टियों से अच्छी होते हुए भी आज की हमारी आवश्यकताओं के उपयुक्त नहीं है। यहाँ अत्यंत संक्षेप में हम लोग इस लिपि की त्रुटियों तथा उसे दूर करने की युक्तियों पर विचार करेंगे।

किसी भी लिपि में उससे संबद्ध भाषा या भाषाओं एवं बोलियों में प्रयुक्त सारी ध्वनियों को व्यक्त करने के चिन्ह होने चाहिए। नागरी लिपि इस दृष्टि से अपूर्ण है। विशेषतः आज जब वह राष्ट्रलिपि घोषित हो चुकी है और उसका उत्तरदायित्व बढ़ गया है उसकी अपूर्णता भी बढ़

---

[1] भारतीय आर्य भाषा और हिंदी, पृ० २२८

गई है। अब उसे न केवल हिंदी और उसकी बोलियों एवं भारत की अन्य आर्य तथा अनार्य भाषाओं एवं उसकी बोलयों में प्रयुक्त सारी ध्वनियों को भी व्यक्त करने की क्षमता रखनी चाहिए। नागरी लिपि, इस दृष्टि से से अपने स्वरों एवं व्यंजनों दोनों ही क्षेत्रों में अपूर्ण है। व्यंजनों के क्षेत्र में उसकी अपूर्णता तो अपेक्षाकृत कम है और संभवतः केवल कुछ भाषाओं में प्रयुक्त एक विशिष्ट प्रकार के ल (ळ) को ही अपना लेने से तथा क, ख, ग, ज के साथ क़, ख़, ग़, ज़ को स्वीकार कर लेने से वह पूर्ण हो जायगी पर स्वरों के क्षेत्र में वह बहुत ही अपूर्ण है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने अपनी पुस्तक 'विचारधारा' में इसकी स्वर विषयक अपूर्णताओं का उल्लेख करते हुए नए लिपि चिन्हों का सुझाव दिया है और अपने 'हिंदी भाषा का इतिहास' तथा 'ब्रजभाषा' नामक ग्रंथों में इन नये लिपि चिन्हों का प्रयोग भी दिया है। यहाँ इस प्रकार के कुछ उदाहरण लिए जा सकते हैं। हिंदी के दो शब्द लीजिए—

१. राजा

तथा २. डाक्टर

'राजा' के भी आरंभ में 'र' के साथ 'ा' का चिन्ह है और 'डाक्टर' में भी 'ड' के साथ 'ा' का चिन्ह है। पर यथार्थतः राजा में 'रा' का और डाक्टर (Doctor) में 'डा' का उच्चारण बिल्कुल एक सा नहीं है। 'रा' में तो 'आ' का उच्चारण है पर डाक्टर में 'डा' को मुँह कुछ गोला करके कहते हैं। इस अंतर को ध्यान में रखते हुए मुँह गोला करके बोले जानेवाले 'आ' या 'ा' को 'ॉ' या ॉ लिखना उचित है और इसके अनुसार डाक्टर न लिखकर डॉक्टर लिखा जाना चाहिए। इसी प्रकार—

ो तथा ौ

मात्राओं में भी हिंदी तथा उसकी बोलियों में दीर्घ तथा ह्रस्व कई भद-विभेद मिलते हैं। इन भेदों को मात्राओं के साथ चंद्राकार चिन्ह तथा ऊपर के चिन्हों को तिरछा रखकर प्रकट किया जा

सकता है । अतः नागरी लिपि में इन चिन्हों को अपना कर उसे पूर्ण कर लेने की आवश्यकता है ।

नागरी लिपि की ह्रस्व 'इ' की मात्रा बड़ी अवैज्ञानिक है । उदाहरण के लिए--

'चन्द्रिका'

शब्द लीजिये । इसे यदि अलग-अलग करके लिखें तो--

च ि न् द् र् क् आ

रूप होगा । यदि ध्यान से देखा जाय तो इसमें 'इ' की मात्रा 'ि' 'च' और 'न्' के बीच में है पर उच्चारण की दृष्टि से उसे र् और क् के बीच में अर्थात्--

च न् द् र् ि क् आ

होना चाहिए । यथार्थतः ह्रस्व 'इ' की मात्रा 'ि' को भी दीर्घ ई की मात्रा की भाँति व्यंजन के बाद ही लगाने की आवश्यकता है । इसके लिए दोनों मात्राओं में कुछ थोड़ा सा अंतर की आवश्यकता है । उत्तरप्रदेशीय सरकार ने ह्रस्व इ की मात्रा की पाई को आधा करके दोनों को--

दीर्घ ई ी (घी)

ह्रस्व इ ि (कि)

अलग किया है पर यह अच्छा नहीं लगता । इन दोनों को किसी और तरह अलग करना चाहिए ताकि वैज्ञानिकता के साथ-साथ सौंदर्य भी न नष्ट हो ।

नागरी लिपि में कुछ अक्षरों के कई रूप प्रचलित हैं । आदर्श लिपि में उच्चारण के लिए एक ही चिन्ह होना चाहिए । नागरी लिपि में आज दो ल (ल तथा ल) दो अ (अ तथा अ) तथा दो ण (ण तथा ण) हैं । इनम केवल ल, अ तथा ण को ले लेने और दूसरे रूपों को छोड़ देने से अपनी लिपि का यह दोष दूर हो सकता है ।

'र' की भी यही दशा है । प्रायः लोग 'क्रम' तथा 'ट्रेन' के 'र' को

आधा समझते हैं। पर यथार्थतः इन में 'र' आधा न होकर 'क' तथा 'ट' आधे हैं। इस प्रकार 'र' के भी तीन रूप (राम ट्रेन तथा क्रम) हैं। इनमें केवल 'र' को लेने और शेष दो को छोड़ देने तथा ट्रेन एवं क्रम को 'ट्रेन' तथा 'क्रम' रूप में लिखने की आवश्यकता है।

नागरी लिपि में कुछ संयुक्ताक्षरों को लिखने का तरीका इतना अवैज्ञानिक है कि आधा उच्चारण होता तो है किसी अक्षर का और आधा लिखा जाता है कोई और अक्षर।

उदाहरण के लिए—

क्र, ख्र, ग्र, घ्र, च्र, ज्र, ट्र, ड्र, त्र, थ्र, द्र, ध्र, न्र, प्र, फ्र ब्र, भ्र, म्र, ल्र, व्र, स्र, ष्र, तथा ह्र

लीजिए। इनमें सभी में 'र' आधा ज्ञात हो रहा है पर यथार्थतः 'र' पूरा है और अन्य अक्षर आधे हैं। इस अवैज्ञानिकता को दूर करने के लिए इन अक्षरों के नीचे हल लगाकर क्‌र, त्‌र तथा ग्‌र आदि लिखने की आवश्यकता है।

इसी प्रकार—

ह्म, ह्य, तथा ह्न

में भी पूर्ण अपूर्ण और अपूर्ण पूर्ण दिखाई पड़ता है। यहाँ भी वही पद्धति उचित होगी।

हिंदी में कुछ अक्षर ऐसे हैं, जिनमें दूसरे का भ्रम होने की गुंजाइश है। जैसे 'ख' को 'रव' और 'पराडा' को 'प रा डा' पढ़ा जा सकता है। इनके लिए 'ख' के स्थान पर तो किसी अन्य चिन्ह के अपनाने की आवश्यकता है और ण के स्थान पर 'ण' को। उत्तर प्रदेशीय सरकार ने 'ख' में नीचे मिलाकर 'ख' और 'रव' के घपले को दूर कर दिया है। यह पद्धति हर दृष्टि से ठीक है।

नागरी लिपि में कुछ लिपि चिन्ह व्यर्थ हैं। उदाहरण के लिए

'ष'

को लें। यह मूर्धन्य है पर आज इसका उच्चारण तालव्य अर्थात्

श

से भिन्न नहीं होता। ऐसी स्थिति में 'ष' को अपनी वर्णमाला से निकाल देने की आवश्यकता है।

ण या ण

की भी स्थिति व्यर्थ है। इसका उच्चारण

ड़ँ

से भिन्न नहीं है। अतः इसे भी छोड़ देना ही उचित होगा। नागरी लिपि के अनुसासिकों में तो

ङ तथा ञ

का आज कोई उपयोग नहीं है। कभी 'गङ्गा' और 'चञ्चल' कहते थे अतः लिखते थे पर आज तो 'गंगा' और 'चंचल' ही कहते तथा लिखते हैं। ऐसी स्थिति में इनको भी रखना व्यर्थ है।

प्रेस, टाइपराइटर तथा टेलीप्रिंटर की दृष्टि से अक्षरों की संख्या को घटाने की आवश्यकता है। इस दृष्टि से ऊपर के अक्षरों को हटाने से संबंधित सुझाओं के अतिरिक्त स्वरों में और कमी की जा सकती है।

इ ई उ ऊ ए ऐ

के स्थान पर केवल

अ

में ि, ी, ु, ू, े तथा ै मात्राओं को जोड़कर िअ, ीअ, ुअ, ूअ, ेअ, ैअ का प्रयोग किया जा सकता है। वर्धा से प्रकाशित होने वाली 'राष्ट्र-भारती' पत्रिका में वर्षों से इस पद्धति का प्रयोग हो रहा है।

इस प्रकार इन सुधारों को अपनाकर नागरी लिपि को आज की आवश्यकता की दृष्टि से अधिक वैज्ञानिक एवं पूर्ण बनाया जा सकता है।

परिशिष्ट ग

हिन्दी भाषा की कुछ समस्याएँ

हिंदी अब राष्ट्रभाषा हो गई है, साथ ही यह युग एकान्त वैज्ञानिकता एवं प्रतियोगिता का है, ऐसी स्थिति में हिंदी के अपने पद पर योग्यता एवं समर्थता के साथ आसीन रहने के लिए यह अत्यावश्यक है कि वह युग के अनुकूल स्पष्ट, शक्तिशाली, सरल और वैज्ञानिक बने।

इस समय हिंदी भाषा संबंधी प्रधान समस्याएँ तीन हैं—

१. शब्दावली की समस्या,

२. वर्तनी की समस्या,

तथा ३. व्याकरण की समस्या।

हिंदी में शब्दों का बहुत अभाव है। विशेषतः आज जब विश्व के सारे ज्ञान-विज्ञान से इसके साहित्य को हमें संपन्न करना है यह कमी और भी खल रही है। इस शब्दावली संबंधी अभाव की पूर्ति के लिए हिंदी साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा मध्यभारत की सरकारें, प्रयाग तथा हैदराबाद विश्वविद्यालय एवं डॉ रघुवीर तथा पं० सुंदरलाल आदि बहुत सी संस्थाओं तथा व्यक्तियों ने महत्वपूर्ण कार्य किए हैं और कर रहे हैं। इस संबंध में निम्नांकित बातों का हमें ध्यान रखना है—

क. अँग्रेज़ी शब्दों के प्रतिशब्द—सामान्य एवं पारिभाषिक अँग्रेज़ी शब्दों के हिंदी प्रतिशब्दों की समस्या प्रधान है। इसके लिए बहुत से कोश बने हैं और बन रहे हैं, पर इस क्षेत्र में बड़ी अव्यवस्था है। है। यदि कुछ लोग संस्कृत की धातु, प्रत्यय तथा उपसर्ग के आधार पर

द्राविण प्राणायाम करा देने वाले क्लिष्ट और अभूतपूर्व शब्दों को गढ़ रहे हैं तो दूसरी ओर कुछ लोग हिंदुस्तानी नाम से उर्दू के मोह में विचित्र वर्णसंकर शब्दों की रचना कर रहे हैं। पर ये दोनों ही पथ श्याध्य नहीं कहे जा सकते।

डाक्टर रघुवीर द्वारा गढ़े गए कुछ शब्दों को यहाँ देखा जा सकता है—

प्रचलित अंग्रेजी शब्द			नव निर्मित हिंदी प्रतिशब्द
सीमेंट	...	...	युजलेप, वज्रचूर्ण
निब	...	...	चंचु
साइकिल	...	...	द्विचक्री
रेलवे	...	...	अयोमार्ग
ट्रेन	...	...	संयान
फुटबाल	...	...	पादकंदुक
मोटर	...	...	वहित्र
फाउंटेनपेन	...	...	मसीगर्भ
टेलीफोन	...	...	दूरभाष
स्टेशन	...	...	स्थात्र
टिकट	...	...	पत्रक
पेंसिल	...	...	अंकनी
होल्डर	...	...	धर्
पैडिल	...	...	क्षेपणी
मोटर साइकिल	...	...	वहित्र द्विचक्र
स्टेशनमास्टर	...	...	स्थात्रपति
प्लेटफार्म	...	...	मंचक
आफिस	...	...	पत्रकालय
हैंडिल	...	...	हस्तक

मिल	...	...	निर्माणी
प्रूफ़	...	...	ईक्ष्य
बैंक	...	...	अधिकोष
साबुन	...	...	स्वफेन
इंजन	...	...	गंत्र
सिगनल	...	...	संज्ञप्ति

अंग्रेज़ी शब्दों के लिए चाहे वह पारिभाषिक हों या सामान्य, हिंदी प्रतिशब्द बनाने में प्रधान रूप से तीन बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक है। एक तो यह कि ऐसे शब्द जो हिंदी में प्रचलित हैं, उनके लिए नए शब्दों को गढ़ने का विचार पूर्णतया छोड़ देना चाहिए। ऊपर निब, साइकिल, रेल, ट्रेन तथा फाउंटेनपेन आदि के लिए डॉ० रघुवीर के द्वारा बनाए गए शब्द दिए गए हैं। स्पष्ट हैं कि ये शब्द अपने प्रचलित अंग्रेज़ी प्रतिशब्दों का जनता में स्थान नहीं ले सकते हैं। अतः इसे व्यर्थ में शक्ति का अपव्यय ही कहा जायगा। इस संबंध में दूसरी बात यह है कि जिन शब्दों के हमें पर्याय गढ़ने ही पड़ें, ऐसे गढ़े जायँ जो सरल हों। इस प्रकार के शब्दों के लिए यदि सामान्यतः कोई शब्द चलता हो तो उसे ही ले लिया जाय। केवल इसलिए 'उसका बहिष्कार कर नए शब्द न बनाए जायँ कि उसकी ध्वनि संस्कृत शब्दों जैसी भारी-भरकम नहीं है। या यदि ऐसे शब्दों के लिए सरल शब्द बन 'सकते हों तो कठिन शब्द बनाने का प्रयास न किया जाय। उदाहरण के लिए अँग्रेज़ी का 'स्टेटाइट' (Steatite) शब्द लें। इसके लिए सीधा शब्द 'साबुन-पत्थर' बनाया जा सकता है, पर डॉ० रघुवीर ने 'स्वफेनाश्म' बनाया है। इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ भाषा के लिए श्रेयस्कर नहीं कही जा सकतीं।

तीसरी विचारणीय बात यह ऐसे शब्दों के संबंध में है जिनका प्रचलन नहीं है और साथ ही जिनके लिए न तो शब्द प्रचलित हैं और न तो सरल

शब्द उपलब्ध हैं। ऐसे शब्दों के लिए पंडित सुंदरलाल के बनाए गए शब्दों की अपेक्षा डॉ० रघुवीर के बनाए गए शब्दों को ही अपनाना श्रेयस्कर है। संस्कृत भाषा हमारा सांस्कृतिक रिक्थ है अतः उसे छोड़ कर अरबी-फारसी का मुखापेक्षी होना उचित नहीं है।

ख. विदेशी शब्द—आज कुछ लोगों में यह भावना भी दिखाई दे रही है कि अरबी, फारसी, तुर्की या अंग्रेज़ी के हिंदी में प्रचलित शब्दों के लिए संस्कृत के शब्दों का प्रयोग किया जाय। इस भावना को भी शुभ नहीं कहा जा सकता। साथ ही यह प्रयास सफल भी नहीं हो सकता। दस-बीस आदमियों की यह प्रवृत्ति देश स्वीकार नहीं कर सकता। हिंदी में केवल अरबी और फारसी के ही लगभग ५ हज़ार शब्द हैं और इन में लगभग ढाई हजार तो लोकजीवन में भी प्रवेश कर गए हैं। इनके बिना हमारी भाषा पंगु हो जायगी। अतः आवश्यकता इस बात की है इन प्रचलित शब्दों को चलने दिया जाय। हाँ यदि और विदेशी शब्दों को हमें नवीन रूप से लेना हो तो उसमें सावधानी बरतें और यथासाध्य किसी पूर्णतः नवीन शब्द को लेने के स्थान पर उसका संस्कृत के आधार पर प्रतिशब्द बना लेने का प्रयत्न करें।

ग. ग्रामीण बोलियों के शब्द—पिछले युग में और कुछ तो आज भी लोग साहित्य में ग्रामीण बोलियों के शब्दों के प्रयोग से परहेज़ करते रहे हैं पर अब प्रगतिवादी विचारधारा की वृद्धि के कारण यह भावना समाप्त होती जा रही है। यथार्थतः हिंदी की अपनी जीवित शब्दावली के ग्रामीण शब्द मुख्य अंग हैं। उन्हें अधिक से अधिक अपनाने से हमारी भाषा की भावाभिव्यक्ति की क्षमता बहुत बढ़ जायगी। अतः इस दृष्टि से ग्रामीण शब्दों के कोशों का निर्माण होना चाहिए ताकि लोग उनसे परिचलित होकर साहित्य में उनका उचित उपयोग कर सकें।

घ. क्रिया—हिंदी में क्रियाओं की कमी है। अंग्रेज़ी की भाँति हिंदी में संज्ञा एवं विशेषण आदि से क्रिया बनाने की प्रवृत्ति नहीं है। ब्रजभाषा

तथा अवधी में यह प्रवृत्ति बहुत अधिक है। अर्थ, आदर, थाह, गान, उमंग, बात, गंध, पानी, हाथ, नन्हा, गाँठ, नंघा, गारी, माटी, तेल, छान, बरद, भैंस, लात, जूता, दाँत, साबुन, तथा हठ आदि से अरथाना, आदरना, थहाना, गाना, उमंगना, बतियाना, गंधाना, पनियाना, हथियाना, नन्हियाना, गँठियाना, नंघाना, गरियाना, मटियाना, तेलियाना, छानना, बरदाना, भैंसाना, लतियाना, जुतियाना, दँतियाना, सबुनाना तथा हठियाना आदि बनाकर इनके बोलने वालों ने इन बोलियों की शक्ति कितनी बढ़ा ली ह कहने की आवश्यकता नहीं। साहित्यिक हिंदी में भी इस प्रवृत्ति को अधिकाधिक प्रश्रय देने की आवश्यकता है। इससे हिंदी की शक्ति बहुत बढ़ जायगी।

वर्तनी, हिज्जय या स्पेलिंग की समस्या भी विचारणीय है। इस संबंध में एकरूपता की आवश्यकता है। आज इस क्षेत्र में बड़ी अव्यवस्था है। कुछ दो वर्तनी वाले शब्द दिए जा रहे हैं—

क्रिया

वे **आये**	वे **आए**	
वे **जायें**	वे **जाएँ**	वे **जावें**
हम **गये**	हम **गए**	
काम **हुवा**	काम **हुआ**	
काम किया **जाय**	काम किया **जाये** (या **जाए**)	काम किया **जावे**

विशेषण

नये बैल	**नए** बैल
राजनैतिक	राजनीतिक
अंतर्राष्ट्रीय	अंताराष्ट्रीय

संज्ञा

चरबी	चर्बी	
कोष	कोश	
उषा	ऊषा	
ओषधि	औषधि	औषध
मुहावरा	मुहाविरा	
दुःख	दुख	

इस प्रकार के उदाहरण बहुत से खोजे जा सकते हैं। इनमें प्रामाणिक रूपों को निश्चित करने की आवश्यकता है।

वर्तनी से ही मिलता-जुलता प्रश्न विभक्तियों को लिखने के ढंग का भी है। कुछ लोग इसे शब्दों के साथ मिलाकर लिखते हैं तो कुछ लोग अलग लिखते हैं। कुछ लोग सर्वनामों के साथ तो मिलाकर लिखते हैं (उनका) पर संज्ञा के साथ अलग लिखते हैं (राम का)। इस संबंध में भी किसी एक रास्ते को अपनाने की आवश्यकता है।

हिंदी के व्याकरण में 'लिंग' और 'ने' इन दोनों की समस्याएँ बड़ी नट-खट हैं। पट्टाभि सीतारमय्या ने एक बार कहा था, 'हम दक्षिण वालों के लिए हिंदुस्तानी या हिंदी दो सबसे बड़े हौवे खड़ी कर देती है; वे हैं कर्त्ता के साथ 'ने' का प्रयोग तथा शब्दों का लिंग-भेद। तेलुगु में लिंग-भेद बड़ा सहज है, शब्द स्त्री या पुरुषवाची ध्वनि या विचार के साथ बदलते हैं तथा स्त्रीलिंग एवं नपुंसक लिंग दोनों के लिए विभक्ति एक सदृश होती है...हम दक्षिण वाले जब हिंदी या हिंदुस्तानी सीखने लगें, तब हम लोगों को इस 'ने' तथा लिंग-भेद के ज़ुल्म से मुक्त ही रखना चाहिए।[१]

हिंदी लिंग की समस्या यथार्थतः बड़ी चिंत्य है। हिंदी के अच्छे

---

[१] ज़ेड० ए० अहमद, नेशनल लैंग्वेज आव इंडिया, पृ० २५२

लेखकों में भी कम लोग ऐसे हैं, जो इस दृष्टि से सर्वथा शुद्ध लिखते हैं। इस दृष्टि से शुद्धि और अशुद्धि का निर्णय भी बड़ा कठिन है। कलम, चर्चा, थीसिस आदि ऐसे शब्द हैं, जिनका व्यवहार कुछ लेखक तो पुंलिंग में करते हैं और कुछ स्त्रीलिंग में।

इस समस्या को सुलझाने के दो ही रास्ते हैं। या तो अंग्रेजी की भाँति लिंग के आधार पर क्रिया, परसर्ग सर्वनाम तथा विशेषण में परिवर्तन करना छोड़ दिया जाय जैसा कि डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने सुझाव दिया है और

(क्रिया)	राम आया,	सीता आया	(सीता आई नहीं)
(परसर्ग)	राम का घोड़ा,	राम का किताब	(राम की किताब नहीं)
(सर्वनाम)	मेरा घर,	मेरा धोती	(मेरी धोती नहीं)
(विशेषण)	अच्छा उपन्यास	अच्छा कविता	(अच्छी कविता नहीं)

आदि को शुद्ध मान लिया जाय, या फिर लिंग-निर्णय का कोई ऐसा दो-टूक नियम बना दिया जाय कि इस विषय में दुविधा को कोई स्थान ही न रहे।

'ने' के प्रयोग के लिए यों तो नियम है कि यह केवल सकर्मक क्रियाओं के सामान्य, संदिग्ध, आसन्न तथा पूर्ण भूत कालों में प्रयुक्त होता है। पर, इस नियम के अपवाद भी हैं। बोलना तथा भूलना आदि सकर्मक क्रियाएँ हैं पर इनके साथ ऊपर का नियम लागू नहीं होता। इसके अतिरिक्त संयुक्त क्रियाओं के विषय में भी कुछ नियम हैं। यहाँ इस विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि ऊपर की भाँति या तो 'ने' का प्रयोग निकाल दिया जाय (जैसे मैं कहा, हम खाया आदि शुद्ध मान लिए जायँ) या फिर नियम और उसके अपवादों को स्पष्ट रूप से निश्चित कर लिया जाय।

इन दो प्रधान समस्याओं के अतिरिक्त बचन तथा विभक्ति-प्रयोग आदि कई क्षेत्रों में हिंदी व्याकरण और प्रयोग के क्षेत्र में स्थिरीकरण की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ 'अमरूद को ठीक से पका होना चाहिए' तथा 'अमरूद ठीक से पका होना चाहिए' ये दोनों प्रयोग चलते हैं। कुछ लोग अन्य विभक्तियों के स्थान पर भी 'को' का प्रयोग करते हैं जैसे 'बीमारों को (के लिए) अनार अच्छा खाद्य है।'

इस प्रकार की अव्यवस्थाओं और अशुद्धि की संभावनाओं पर विचार कर निश्चित नियम बनाने की आवश्यकता है। बिना ऐसा किए हिन्दी व्याकरण में पूर्णता और प्रामाणिकता नहीं आ सकती।

परिशिष्ट घ

१९३१ ई० की जनगणना के अनुसार बोलने वालों की संख्या

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ

भाषा	करोड़	लाख
हिंदी	१२	५२
सिंधी	०	४०
लहँदा	०	८६
पंजाबी	१	३९
गुजराती	१	९
मराठी	२	९
आसामी	०	२०
बँगला	५	३५
उड़िया	१	१२

हिन्दी की बोलियाँ

बोली	करोड़	लाख	
खड़ी बोली	०	५३	पश्चिमी हिंदी
बाँगरू	०	२२	
ब्रज भाषा	०	७९	
कनौजी	०	४५	
बुंदेली	०	६९	
अवधी	१	४२	पूर्वी हिंदी
बघेली	०	४६	
छत्तीसगढ़ी	०	३८	

भोजपुरी	२ — ०	बिहारी
मैथिली	१ — ०	
मगही	० — ६५	
मारवाड़ी	० — ६०	राजस्थानी
जयपुरी	० — ३०	
मेवाती	० — १६	
मालवी	० — ४४	
पहाड़ी	० — २८	पहाड़ी

परिशिष्ट ङ

हिंदी भाषा तथा लिपि संबंधी परीक्षोपयोगी प्रश्न

(यहाँ ऐसे प्रश्न दिए गए हैं जो विभिन्न विश्व विद्यालयों के बी० ए० हिंदी साहित्य सम्मेलन के विशारद, महिला विद्यापीठ प्रयाग की विदुषी तथा इसी की समकक्ष अन्य परीक्षाओं में पूछे जाते हैं।)

अध्याय १

१. संसार में कितने भाषा परिवार हैं ? भारोपीय (भारत-यूरोपीय) परिवार पर परिचयात्मक टिप्पणी लिखिए।

अध्याय २

२. भारोपीय (भारत-यूरोपीय) परिवार को किन दो वर्गों में भाषा-शास्त्रियों ने बाँटा है। एक वर्ग और उसकी भाषाओं का परिचय दीजिए।

३. आर्य उपपरिवार पर एक निबंध लिखिए।

४. संसार की भाषाओं में हिंदी का क्या स्थान है ?

अध्याय ३

५. भारतीय आर्य भाषा के इतिहास को कितने कालों में बाँटा जा सकता है ? किसी एक काल पर प्रकाश डालिए।

अध्याय ४

६. आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के नाम लिखिए और उनमें से किसी दो पर परिचायात्मक टिप्पणी दीजिए।

७. आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की वर्गीकरण की समस्या के बारे में आप क्या जानते हैं ?

अध्याय ५

८. हिंदी भाषा के विकास पर एक लेख लिखिए ?

९. हिंदी भाषा की कितनी उपभाषाएँ हैं और उनका किन-किन अपभ्रंशों से संबंध है ? किसी एक उपभाषा पर, उसके अंतर्गत आनेवाली ग्रामीण बोलियों को देते हुए प्रकाश डालिए। (इस प्रश्न की कुछ सामग्री ७वें अध्याय तथा परिशिष्ट घ में भी है। उपभाषा पर प्रकाश डालने के लिए उसकी ग्रामीण बोलियाँ, उनका क्षेत्र, जनसंख्या, ग्रामीण बोलियों का लिखित एवं लोक साहित्य आदि विषयक सामग्री दीजिए।)

अध्याय ६

१०. हिंदी भाषा के साहित्यिक रूपों पर प्रकाश डालिए। हिंदी क्षेत्र की प्रतिनिधि साहित्यिक भाषा आप किसे समझते हैं ?

अध्याय ७

११. हिंदी की कौन-कौनसी उपभाषाएँ हैं और उनमें कौन-कौन सी बोलियाँ हैं। किन्हीं तीन बोलियों का परिचय दीजिए। (इसकी कुछ सामग्री परिशिष्ट घ में भी है)

अध्याय ८

१२. हिंदी शब्द-समूह में देशी-विदेशी तत्त्वों पर प्रकाश डालिए।

१३. 'हिंदी शब्द-समूह पर यूरोपीय प्रभाव' विषय पर संक्षिप्त निबंध लिखिए।

१४. शब्द-समूह की दृष्टि से क्या कोई भाषा विशुद्ध कही जा सकती है ? हिंदी शब्द-समूह पर इस दृष्टि से प्रकाश डालिए।

१५. हिंदी शब्द-समूह में अंग्रेजी शब्दों के अपेक्षाकृत अधिक होने के

क्या कारण हैं ? हिंदी ने प्रधानत: किन-किन क्षेत्रों में अंग्रेज़ी से शब्द लिए हैं ?

अध्याय ९

१६. नागरी लिपि और अंकों के विकास पर प्रकाश डालिए ।

१७. भारतीयों ने अपनी लिपि का निर्माण स्वयं किया है या विदेशियों की सहायता से ? विभिन्न मतों का उल्लेख करते हुए अपना मत दीजिए ।

१८. नागरी लिपि का सिंधुघाटी की लिपि, ब्राह्मी लिपि, गुप्त लिपि और कुटिल लिपि से क्या संबंध है ?

१९. क से ह तक के अक्षरों और १ से ९ तक के अंकों में किन्हीं १० के विकास चित्रों को दीजिए ।

२०. प्राचीनकालीन अंकों एवं आधुनिक अंकों की लेखन प्रणाली में प्रधान अंतर कौन-कौन से हैं ?

परिशिष्ट क

आर्यों के मूल स्थान एवं उनके भारत में आगमन' पर एक संक्षिप्त निबंध लिखिए ।

परिशिष्ट ख

'नागरी लिपि में सुधार' विषय पर एक निबंध लिखिए ।

परिशिष्ट ग

हिंदी भाषा की प्रधान समस्याओं पर प्रकाश डालिए ।